संस्थापित १८६७ ई.

आर्य मित्र

साप्ताहिक

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख पत्र

आजीवन शुल्क ₹ २,५००
वार्षिक शुल्क ₹ २००
(विदेश ५० डालर वार्षिक) एक प्रति ₹ ५.००

● वर्ष : १३० ● : संयुक्तांक १२ एवं १३ ● २० एवं २७ मार्च, २०२५ (गुरुवार) चैत्र कृष्णपक्ष त्रयोदशी सम्वत् २०८१ ● दयानन्दाब्द २०० वेद व मानव सृष्टि सम्वत्:१६६०८५३१२५

ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ की रचना क्यों की?

-मनमोहन कुमार आर्य

कोई भी विद्वान जिस विषय को अच्छी प्रकार जानता है, उसको लोगों को जनाने व उस ज्ञान व विद्या से अपरिचित लोगों को परिचित कराने के लिये उस विषयक अपने ग्रन्थ वा पुस्तक की रचना करता है। संसार में इसी उद्देश्य से सहस्रों व लाखों ग्रन्थ लिखे गये हैं। इसके विपरीत कुछ लोग धनोपार्जन व अपने किसी निहित स्वार्थ व विचारधारा के प्रचार के लिये भी ग्रन्थों की रचना करते हैं। यदि रचना करने वाला व्यक्ति अपने विषय का विद्वान हो और उसका उद्देश्य सात्विक व जनकल्याण हो, तो उस व्यक्ति व उसकी रचना का महत्व होता है व उससे लाखों लोग लाभान्वित होते हैं। ऋषि दयानन्द भी चारों वेदों के अप्रतिम विद्वान थे। उनके समय में सृष्टि के आदि में ईश्वर प्रदत्त वेद ज्ञान से लोग दूर हो गये थे। वेदज्ञान प्रायः विलुप्त था। चार वेद ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद सब सत्य विद्याओं के ग्रन्थ हैं और ऋषि दयानन्द के समय में संसार में जो ज्ञान व मान्यतायें प्रचलित थीं वह सत्य ज्ञान पर आधारित न होकर अज्ञान पर आधारित, अन्धविश्वासों से युक्त तथा मनुष्यों का हित करने के स्थान पर अहित कर रहीं थी। अतः ईश्वर सहित अपने विद्यागुरु प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द सरस्वती एवं अपने कुछ अनुयायियों की प्रेरणा से उन्होंने वैदिक ज्ञान वा विद्या के प्रचार के लिये वेदानुकूल वेद विद्या को प्रचारित व प्रसारित करने वाले ग्रन्थ की रचना की, उसे 'सत्यार्थप्रकाश' नाम दिया और उसके माध्यम से विलुप्त वेदों की सत्य व हितकारी शिक्षाओं का देश देशान्तर में प्रचार-प्रसार किया। सत्यार्थप्रकाश जैसा ग्रन्थ इतिहास में इससे पूर्व कभी नहीं रचा गया। सत्यार्थप्रकाश वस्तुतः अज्ञान व अविद्या से सर्वथा मुक्त, देश देशान्तर व मनुष्य समाज में सत्य विद्या व वैदिक मान्यताओं का प्रचार करने वाला अपूर्व व अद्भुद ग्रन्थ है। एक साधारण व्यक्ति भी इसे पढ़कर विद्वान बन जाता है और मनुष्य जीवन की सभी समस्याओं व शंकाओं का समाधान

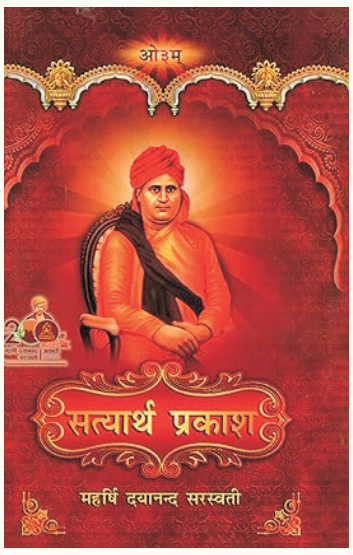

प्राप्त करने सहित अपने जीवन के उद्देश्य व लक्ष्यों से परिचित होकर उनकी प्राप्ति के साधनों का ज्ञान भी उसे इस ग्रन्थ के अध्ययन से प्राप्त होता है। सत्यार्थप्रकाश सभी मनुष्यों के जीवन से अविद्या व अन्धविश्वासों को दूर कर उन्हें ईश्वर के सच्चे स्वरूप का परिचय देकर ईश्वर से मिलाता व उसे प्राप्त कराता है। सत्यार्थप्रकाश की तुलना में हमें संसार का कोई ग्रन्थ इतना महत्वपूर्ण नहीं लगता जितना महत्वपूर्ण यह ग्रन्थ है।

ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश का प्रथम संस्करण सन् १८७४ में लिख कर प्रकाशित कराया था। अपने मृत्यु से पूर्व सन् १८८३ में आपने इस ग्रन्थ का संशोधित एवं परिमार्जित संस्करण तैयार किया था जो ३० अक्टूबर, १८८३ को उनकी मृत्यु के बाद सन् १८८४ में प्रकाशित हुआ। यह संशोधित संस्करण ही इस समय देश देशान्तर में प्रचलित है। इस ग्रन्थ की भूमिका में ऋषि दयानन्द जी ने इस ग्रन्थ को बनाने का प्रयोजन अवगत कराया है। वह कहते हैं ''मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य-सत्य अर्थ का प्रकाश करना है, अर्थात् जो सत्य है उस को सत्य और जो मिथ्या है उस को मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय। किन्तु जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है, वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मतवाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है, इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिए विद्वान् आप्तों (जिन्हें सत्य विद्याओं का यथार्थ व पूर्ण ज्ञान हो तथा जो समाज की उन्नति की भावना से निःस्वार्थ होकर सामाजिक कार्यों में प्रवृत्त हों) का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मुनष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें, पश्चात् वे स्वयम् अपना हिताहित समझ कर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें।

महर्षि दयानन्द ने उपुर्यक्त पंक्तियों में अपने ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश को बनाने का प्रयोजन विदित किया है। उन्होंने जो कहा है उसका उनके द्वारा ग्रन्थ में पूरा पूरा पालन हुआ है। महर्षि दयानन्द सच्चे व सिद्ध योगी थे।

क्रमशः पृष्ठ....७ पर

वेदामृतम्

निःसालां धृष्णुं धिषणम्, एकवाद्यां जिघत्स्वम्।
सर्वाश्चण्डस्य नप्त्यो, नाशयामः सदान्वाः।।

अथर्व २.१४.१

प्रचंड क्रोध में मनुष्य आपे से बाहर हो जाता है। क्रोष से वह संमोह अर्थात् मूढ़ता की स्थिति में पहुँच जाता है और किंकर्तव्यविमूढ़ होकर अपने छोटे-बड़े और समानों के साथ अत्यन्त अवांछनीय और आपत्तिजनक व्यवहार करने लगता है, भले ही क्रोध शान्त होने पर वह अपने आचरण पर स्वयं पश्चात्ताप करे। वह 'निःसाला' वृत्ति से अभि-भूत होकर जिसे चाहे गलहत्था देकर बाहर निकाल देता है। 'धृष्णु' वृत्ति के वशीभूत हो जिसका चाहे घर्षण या अपमान कर बैठता है। 'धिषण' स्वभाव या हठी-वृत्ति से आक्रांत होकर जो बात मन में ठान लेता है, वह दूसरों से करवाकर ही छोड़ता है। दैवी और राक्षसी दो प्रकार की वाणियों में से वह एक राक्षसी वाणी ही बोलता है। अकारण दूसरों की भर्त्सना करता है, अपशब्दों की बौछार उनपर करता रहता है। उसके अन्दर 'जिघत्सु'-वृत्ति अर्थात् खाने की वृत्ति, रिश्वत लेने की वृत्ति, या दूसरों की वस्तु को बलात् हड़प लेने की वृत्ति आ जाती है, क्योंकि क्रोध से अन्धा होकर वह सत्यनिष्ठा को छोड़ बैठता है। ये समस्त वृत्तियाँ, प्रचंड क्रोध की ये सब सन्तानें, मनुष्य को रुलानेवाली हैं। ये क्रोधकर्ता को भी रुलाती हैं और जिसपर क्रोध किया जाता है उसे भी रुलाती हैं। फलतः परिवार और समाज में इनके कारण रोदन-क्रन्दन ही मचा रहता है। हमने समझ लिया है कि क्रोध मनुष्य का महान् वैरी है, अतः क्रोध को और क्रोध-जन्य इन सब वृत्तियों को निर्मूल कर देने का संकल्प कर लिया है। हमारी शरीर-रूप शाला का 'अग्नि' आत्मा और गृह-रूप शाला का 'अग्नि' गार्हपत्याग्नि प्रचण्ड क्रोध को और प्रचंड क्रोध-वृत्तियों को विनष्ट करने में हमारा सहायक हो।

साभार-वेदमंजरी

सहनशीलता का जादू

-अजय ओम प्रकाश

महर्षि दयानन्द ठहरे थे फर्रुखाबाद में गंगा के तट पर। उनसे थोडी ही दूर एक और झोपडी में एक दूसरा साधु भी ठहरा हुआ था । प्रतिदिन वह देव दयानन्द की कुटिया के पास आकर उन्हें गालियाँ देता रहता था । देव दयानन्द सुनते और मुस्करा देते। कोई भी उत्तर नहीं देते थे। कई बार उनके भक्तों ने कहा-''महाराज ! आपकी आज्ञा हो तो इस दुष्ट को सीधा कर दे।''

महाराज सदा कहते--''नहीं, वह स्वयं ही सीधा हो जाएगा।''

एक दिन किसी सज्जन ने फलों का एक बहुत बडा टोकरा महर्षि के पास भेजा। महर्षि ने टोकरे से बहुत अच्छे-अच्छे फल निकाले, उन्हें एक कपडे में बाँधा और एक व्यक्ति से बोले---''ये फल उस साधु को दे आओ, जो उस परली कुटी में रहता है, जो प्रतिदिन यहाँ आकर कृपा करता है ।''

उस व्यक्ति ने कहा---''परन्तु वह तो आपको गालियाँ देता है ???''

महर्षि बोले---''हाँ, उसी को दे आओ ।''

वह सज्जन फल लेकर उस साधु के पास गए। जाकर बोले-साधु बाबा, ये फल स्वामी दयानन्द ने आपके लिए दिए हैं।

साधु ने दयानन्द का नाम सुनते ही कहा-''अरे ! यह प्रातःकाल किसका नाम ले लिया तूने ? पता नहीं, आज भोजन भी मिलेगा या नहीं। चला जा यहाँ से। मेरे लिए नहीं, किसी दूसरे के लिए भेजे होंगे । मैं तो प्रतिदिन उसे गालियाँ देता हूँ।''

उस व्यक्ति ने महर्षि के पास आकर यही बात कही ।

महर्षि बोले-''नहीं, तुम फिर उसके पास जाओ । उसे कहो कि आप प्रतिदिन जो अमृत-वर्षा करते हो, उसमें आपकी पर्याप्त शक्ति लगती है । ये फल इसलिए भेजे हैं कि इन्हें खाइए, इनका रस पीजिए, जिससे आपकी शक्ति बनी रहे और आपकी अमृत-वर्षा में कमी न आ जाए।

उस व्यक्ति ने साधु के पास जाकर वही बात कह दी-''सन्त जी महाराज, ये फल स्वामी दयानन्द ने आप ही के लिए भेजे हैं और कहा है कि आप प्रतिदिन जो अमृत-वर्षा उन पर करते हैं, उसमें आपकी पर्याप्त शक्ति व्यय होती है। इन फलों का प्रयोग कीजिये, जिससे आपकी शक्ति बनी रहे और आपकी अमृत-वर्षा में न्यूनता न आए।

साधु ने यह सुना तो घडों पानी उसके ऊपर पड गया । निकला अपनी कुटिया से, दौडता हुआ पहुँचा महर्षि के पास। उनके चरणों में गिर पडा, बोला-''महाराज ! मुझे क्षमा करो। मैंने आपको मनुष्य समझा था, आप तो देवता हैं!

यह है सहनशीलता का जादू ! जिसमें यह सहनशीलता उत्पन्न हो जाती है, उसके जीवन में एक अनोखी मिठास, एक अद्भुत सन्तोष और एक विचित्र प्रकाश आ जाता है।

देवेन्द्रपाल वर्मा — प्रधान/संरक्षक
पंकज जायसवाल — मंत्री/सम्पादक
आर्य शिवशंकर वैश्य — प्रबन्ध सम्पादक

सम्पादकीय.....

कलंकित न्यायपालिका

न्यायाधीश यशवंत वर्मा के घपले ने न्यायपालिका और उसमे बैठे जजों के मुख पर कालिख पोत दी, न्यायपालिका को ऐसा स्नानागार साबित कर दिया जिसमें सब नंगे हैं और अब किसी पर विश्वास नहीं किया जा सकता। कलंकित होने के बाद भी जज अपने में कुछ सुधार लाने को तैयार नहीं लग रहे। वर्तमान न्यायपालिका का पुनर्निर्माण करने की जरूरत है और वह तब ही हो सकता है जब इस व्यवस्था को खत्म कर दिया जाए। यानी नये नियमों का निर्माण करने के लिए वर्तमान नियमों को बदलना जरूरी है ।

इलाहाबाद हाई कोर्ट के जस्टिस राम मनोहर मिश्रा ने १६ मार्च, २०२५ के फैसले में कहा था कि ''अंगों को दबाना और लड़की के कपड़े उतारने की कोशिश करने से रेप की कोशिश साबित नहीं होती। ऐसा करना रेप की तैयारी करना है, रेप करना नहीं है'' अर्थात् जज साहब चाहते हैं कि रेप होना ही चाहिए था'' कल जस्टिस मिश्रा के फैसले के खिलाफ किसी वकील ने सुप्रीम कोर्ट में याचिका दायर की थी जिस पर सुनवाई जस्टिस बेला त्रिवेदी और जस्टिस प्रसन्ना बी वराले ने की। वकील ने अपनी दलील शुरू करते हुए "बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ'' का जब जिक्र किया तो जस्टिस बेला त्रिवेदी ने कहा कि वकील की तरफ से कोर्ट में कोई बहस नहीं होनी चाहिए और यह कह कर याचिका को खारिज कर दिया। ये वही बेला त्रिवेदी हैं जिन्होंने मध्यप्रदेश की एक ४ साल की बच्ची के बलात्कारी और हत्यारे की फांसी की सजा उम्रकैद में बदलते हुए कहा था कि Every Sinner Has A Future – इसका मतलब था उन्हें बच्ची के जीवन से कोई मतलब नहीं था और कल याचिका को खारिज करने का भी मतलब यही निकलता है कि वह भी जस्टिस मिश्रा की तरह बच्चियों के रेप को सही मानती हैं और यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि न्यायपालिका में बैठे ''कथित न्यायाधीश'' ही बलात्कार के लिए जिम्मेदार हैं– ऐसे न्यायाधीशों को ईश्वर से कुछ तो डरना चाहिए और इसलिए बॉम्बे हाई कोर्ट की नागपुर बेंच के जस्टिस नितिन साम्ब्रे और जस्टिस वृषाली जोशी की पीठ ने नागपुर हिंसा के मुख्य आरोपी फहीम खान के घर पर बुलडोजर चला कर गिराने को स्टे कर दिया लेकिन यह आदेश होने तक उसका घर गिर चुका था, फिर भी बेंच ने दूसरे अन्य मुख्य आरोपी युसूफ शेख के घर के अवैध हिस्से को गिराने के काम पर रोक लगा दी।

ये जज, दंगाइयों के साथ खड़े हो गए। उनके घर की रक्षा कर रहे हैं कानूनी दावपेच से तो उन्होंने जो लोगों के घरों को और सरकार एवं निजी संपत्तियों को आग लगाई वह किस अधिकार से लगाई। पहले भी दंगाइयों को कई हाई कोर्ट और सुप्रीम कोर्ट बचाते रहे हैं। और इसलिए यह कहना गलत नहीं होगा कि न्यायपालिका में बैठे जज ही दंगों के लिए जिम्मेदार हैं। मतलब ये जज ही बलात्कार को बढ़ावा दे रहे हैं और दंगे भी करा रहे हैं। नागपुर बेंच के जजों को चाहिए कि जितने भी दंगाई पुलिस ने पकड़े हैं, उन सभी को छोड़ दें। पूरी न्यायपालिका का मुंह काला हुआ है लेकिन लगता है इन लोगों को काला मुंह बहुत पसंद है। दंगाइयों और बलात्कारियों को संरक्षण देने से पहले ऐसे जजों को जवाब देना चाहिए कि बलात्कारी और दंगाई किस मौलिक अधिकार से ऐसा कुकर्म करते हैं। आपने जाकर "दंगो" को स्टे क्यों नहीं किया। ''आदमी को चाहिए वक्त से डर कर रहे, कौन जाने किस घड़ी वक्त का बदले मिजाज'' जब ईश्वर की लाठी पड़ती है तो आवाज भी होती है, धमक भी आती है। यह याद रहे।

माननीय उच्चतम न्यायालय ने न्यायाधीश वर्मा के मामले में स्वतः संज्ञान लेते हुए उन्हें इलाहाबाद हाई कोर्ट भेजने का फैसला किया फिर खबर आई कि अभी इस पर फैसला नहीं हुआ। सफाई में नकदी कांड से तटस्थला बताई। ततपश्चात जस्टिस वर्मा को दिल्ली हाई कोर्ट में न्यायिक कार्य से रोक दिया। इसके बाद उन्हें इलाहाबाद हाईकोर्ट भेजे जाने का समाचार आया। जिसका बार एसोसियशनें विरोध कर रहीं हैं।

न्यायाधीशों के कुछ अन्य उदाहरण–अगस्त २००८ में पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय की न्यायाधीश निर्मल कौर के घर १५ लाख रूपये रिश्वत देने गये एक व्यक्ति को गिरफ्तार किया गया। पूछताछ में उसने बताया कि यह रूपया जज निर्मल यादव को देना थां जांच समिति ने सीबीआई को जांच सौंपने की सिफारिश की। सीबीआई के अनुमति मांगने पर नहीं मिली। सन् २०११ में सीबीआई ने पुनः अनुमति मांगी जो मिल गई। केस का निस्तारण अभी प्रतीक्षारत है।

दिल्ली हाईकोर्ट के जज शमित मुखर्जी को सन् २००३ में एक ठेकेदार से रूपया लेकर फैसला देने का आरोप लगा सीबीआई ने उन्हें गिरफ्तार किया। उसका निस्तारण भी अभी अधर में है।

अनेक ऐसे मामले हैं जिससे यह स्पष्ट होता है कि भ्रष्टाचार में घिरे जज को अपने पद से इटावा असम्भव है यदि वह अपने पद से इस्तीफा न दें।

न्यायपालिका की दूषित नियुक्ति व्यवस्था अर्थात् जज ही जजों की नियुक्ति, पदोन्नति व स्थानांतरण करता है। गम्भीर आरोपी जज के विरूद्ध जांच व इस्तीफा मांगना उस कोलेजियम व्यवस्था के कारण है जिसका भारतीय संविधान में कोई उल्लेख नही है। विश्व के किसी भी प्रतिष्ठित लोकतंत्र में ऐसी व्यवस्था नहीं मिलती।

सन् २०१४ में इस कोलेजियम के स्थान पर सबकी सहमति से संविधान में संशोधन करके न्यायिक आयोग गठन किया गया था जिसे माननीय उच्च न्यायालय ने असंवैधानिक कह कर रद्द कर दिया। आखिर यह न्यायाधीश कब अपनी जवाबदेही व पारदर्शिता तय करेंगे। यह विचारणीय प्रश्न है।

–सम्पादक

गतांक से आगे.....

सत्यार्थ प्रकाश

स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाशः

४१ - 'स्वतन्त्र' 'परतन्त्र' जीव अपने कामों में स्वतन्त्र और कर्मफल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र वैसे ही ईश्वर अपने सत्याचार आदि काम करने में स्वतन्त्र है।

४२- 'स्वर्ग' नाम सुख विशेष भोग और उस की सामग्री की प्राप्ति का है।

४३- 'नरक' जो दुःख विशेष भोग और उस की साम्रगी को प्राप्त होना है।

४४- 'जन्म' जो शरीर धारण कर प्रकट होना सो पूर्व, पर और मध्य भेद से तीनों प्रकार का मानता हूँ।

४५- शरीर के संयोग का नाम 'जन्म' और वियोग मात्र को 'मृत्यु' कहते हैं।

४६- 'विवाह' जो नियमपूर्वक प्रसिद्धि से अपनी इच्छा कर के पाणिग्रहण करना वह 'विवाह' कहाता है।

४७- 'नियोग' विवाह के पश्चात् पति वा पत्नी के मर जाने आदि वियोग में अथवा नपुंसकत्वादि स्थिर रोगों में स्त्री वा पुरुष आपत्काल में स्ववर्ण वा अपने से उत्तम वर्णस्थ स्त्री वा पुरुष के साथ सन्तानोत्पत्ति करना।

४८- 'स्तुति' गुणकीर्त्तन श्रवण और ज्ञान होना, इस का फल प्रीति आदि होते हैं।

४९ - 'प्रार्थना' अपने सामर्थ्य के उपरान्त ईश्वर के सम्बन्ध से जो विज्ञान आदि प्राप्त होते हैं उन के लिये ईश्वर से याचना करना और इस का फल निरभिमान आदि होता है।

५०- 'उपासना' जैसे ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं वैसे अपने करना, ईश्वर को सर्वव्यापक, अपने को व्याप्य जान के ईश्वर के समीप हम और हमारे समीप ईश्वर है ऐसा निश्चय योगाभ्यास से साक्षात् करना उपासना कहाती है. इस का फल ज्ञान की उन्नति आदि है।

५१-'सगुणनिर्गुणस्तुतिप्रार्थनोपासना' जो-जो गुण परमेश्वर में हैं उन से युक्त और जो जो गुण नहीं हैं उन से पृथक् मान कर प्रशंसा करना सगुणनिर्गुण स्तुति. शुभ गुणों के ग्रहण की ईश्वर से इच्छा और दोष छुड़ाने के लिये परमात्मा का सहाय चाहना सगुणनिर्गुण प्रार्थना और सब गुणों से सहित सब दोषों से रहित परमेश्वर को मान कर अपने आत्मा को उस के और उस की आज्ञा के अर्पण कर देना सगुणनिर्गुणोपासना कहाती है।

ये संक्षेप से स्वसिद्धान्त दिखला दिये हैं। इनकी विशेष व्याख्या इसी 'सत्यार्थप्रकाश' के प्रकरण प्रकरण में है तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि ग्रन्थों में भी लिखी है अर्थात् जो-जो बात सब के सामने माननीय है उस को मानता अर्थात् जैसे सत्य बोलना सब के सामने अच्छा और मिथ्या बोलना बुरा है ऐसे सिद्धान्तों को स्वीकार करता हूँ।

और जो मतमतान्तर के परस्पर विरुद्ध झगड़े हैं उन को मैं प्रसन्न नहीं करता क्योंकि इन्हीं मत वालों ने अपने मतों का प्रचार कर मनुष्यों को फंसा के परस्पर शत्रु बना दिये हैं। इस बात को काट सर्व सत्य का प्रचार कर सब को ऐक्यमत में करा द्वेष छुड़ा परस्पर में दृढ़ प्रीतियुक्त करा के सब से सब को सुख लाभपहुँचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है।

सर्वशक्तिमान् परमात्मा की कृपा सहाय और आप्तजनों की सहानुभूति से 'यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जावे' जिस से सब लोग सहज से धर्मार्थ काम, मोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें। यही मेरा मुख्य प्रयोजन है।

अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु ।

ओम् शन्नो मित्रः शं वरुणा शन्नो भवत्वर्य्यमा। शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः ।।
नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम्। ऋतमवादिषम्।
सत्यमवादिषम्। तन्मामवीत् तद्वक्तारमावीत् । आवीन्माम् । आवींद्वक्तारम् ।
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्याणां परमविदुषां
श्रीविरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण
श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचितः
स्वमन्तव्यामन्तव्यसिद्धान्तसमन्वितः सुप्रमाणयुक्तः
सुभाषाविभूषितः सत्यार्थप्रकाशोऽयं ग्रन्थः सम्पूर्तिमगमत् ।।

२३ मार्च : बलिदान दिन पर विशेष...

अमर हुतात्मा भगतसिंह और आर्यसमाज

-राजेश आर्य, गुजरात

काकौरी की घटना के बाद भारतीय स्वाधीनता संग्राम के क्षेत्र में यदि किसी का नाम चमकता दिखाई देता है तो वह है क्रान्ति का प्रतीक, अमर हुतात्मा भगत सिंह। उत्तर भारत में उस समय इस वीर की ख्याति इतनी फैल गई थी कि सशस्त्र क्रान्ति और भगतसिंह दोनों शब्द पर्यायवाची बन गए थे। यह अमर हुतात्मा भगत सिंह भी एक आर्यसमाजी परिवार की ही देन थे।

वीरेन्द्र सिन्धु जी अपनी पुस्तक 'युगदृष्टा भगत सिंह और उनके मृत्युंजय पुरखे' में लिखती है, "सरदार अर्जुन सिंह (भगतसिंह के दादा) ने ऋषि दयानन्द के दर्शन किये तो मुग्ध हो गये और उनका भाषण सुना तो नवजागरण की सामाजिक सेना में भरती होकर आर्यसमाजी बन गये। वे उन थोड़े से लोगों में थे, जिन्हें स्वयं ऋषि दयानन्द ने दीक्षा दी थी। यज्ञोपवीत अपने हाथ से पहनाया था। यह सरदार अर्जुन सिंह का सांस्कृतिक पुनर्जन्म था। हवन कुण्ड उनका साथी हो गया और संध्या प्रार्थना सहचरी। अर्जुन सिंह का आर्यसमाजी बनना एक क्रान्तिकारी कदम था। कई शास्त्रार्थों में वे ही आर्यसमाज के प्रमुख वक्ता रहे, आर्यसमाज के उत्सवों में दूर दूर भाषण के लिए जाते रहे। वे अपने क्षेत्र में प्रमुख आर्यसमाजियों में गिने जाते थे। अब वे किसान भी थे, हकीम भी थे, आर्यसमाजी भी थे। (पृ. ३-६)

सत्यप्रिय शास्त्री जी अपनी पुस्तक 'भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम में आर्यसमाज का योगदान' में लिखते है, सन् १९५० ई. में दिल्ली के विभिन्न क्षेत्रों के अन्तर्गत स. भगत सिंह की बरसी मनाई जा रही थी। एक जल्से में मैं पं. लोकनाथ जी तर्कवाचस्पति (पूर्व महोपदेशक, आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब) के साथ जा रहा था। रास्ते में स. भगत सिंह की चर्चा प्रारम्भ हो गई, तो पं. लोकनाथ जी ने मुझे बताया कि स. भगत सिंह तो मेरा शिष्य था। मैंने पूछा - यह कैसे? तो पं. जी ने उत्तर दिया कि मैं अपनी प्रचार यात्रा में मुलतान से लाहौर आर्य समाज के कार्यक्रम पर आया था, बच्छोवाली आर्य समाज मन्दिर में मेरा व्याख्यान हुआ। जब मैं समाज मन्दिर से विदा होकर बाहर निकलने लगा तब एक सोलह वर्षीय नवयुवक ने मेरे चरणों को स्पर्श किया और कहा - पूज्य पण्डित जी! मैं आपके करकमलों से यज्ञोपवीत की दीक्षा लेना चाहता हूँ। मैंने पूछा, तुम्हारा नाम क्या है? क्या काम करते हो? तो उस नवयुवक ने बताया कि मैं स. किशन सिंह का पुत्र हूँ, भगत सिंह मेरा नाम है, और दयानन्द कालेज में पढ़ता हूँ। मैंने अपने घर में और अपने मित्रों में आप की विद्वत्ता की बड़ी प्रशंसा सुनी हैं, अतः मैंने मन में निश्चय किया हुआ है कि यज्ञोपवीत की दीक्षा आपके ही हाथों से लूँ। पं. लोकनाथ जी ने बताया कि मुझे अपनी इच्छा के विरुद्ध उस दिन लाहौर में रुकना पड़ा और दूसरे दिन मैंने स. भगत सिंह का विधिवत् यज्ञोपवीत संस्कार कराया। जब मैने गायत्री का उपदेश किया तो वह प्रस्तर मूर्ति के सदृश बड़ी श्रद्धा और प्रेम से उपदेश को श्रवण करता रहा, उसने जीवनपर्यन्त गायत्री का जप करने की प्रतिज्ञा की। पं. जी ने कहा मुझे क्या पता था कि यह साधारण सा युवक भारत माता की परतंत्रता की बेड़ियाँ काटने के निमित्त अपना जीवन समर्पण कर देगा। पं. जी ने आंखों में आँसू भरकर कहा कि भगत सिंह मेरा परम शिष्य था। (पृ. १०१-१०२)

सरदार अर्जुन सिंह के किशन सिंह, अजीत सिंह और स्वर्ण सिंह ये तीन पुत्र थे। इनमें से किशन सिंह हुतात्मा भगत सिंह के पिताजी थे। वीर भगत सिंह की आरम्भिक शिक्षा 'दयानन्द एंग्लो वेदिक स्कूल' में हुई थी। बाद में नेशनल कॉलेज में गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक श्री पं. जयचन्द्र विद्यालंकार के सम्पर्क से इनकी राष्ट्रीय भावना में निखार आया। इस वीर के विदेशी अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध क्रान्तिकारी जीवन का प्रारम्भ महर्षि दयानन्द के मानसपुत्र लाला लाजपत राय के बलिदान से ही हुआ था।

आर्यसमाज हमेशा स्वदेशी, स्वतन्त्रता और स्वाभिमान का आन्दोलन रहा है। उस समय सम्पूर्ण भारत में आर्यसमाज स्वतन्त्रता, स्वदेशप्रियता और नवजागरण का शंखनाद कर रहा था। भारत की अंग्रेज सरकार को आर्यसमाज और आर्यसमाजियों पर बहुत सन्देह हो गया था। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि अमर हुतात्मा भगत सिंह आर्यसमाज कलकत्ता में दो बार आकर ठहरे थे।

आर्यसमाज कलकत्ता में भगत सिंह का प्रथम प्रवास :

प्रथम बार सान्डर्स वध से पूर्व भगत सिंह कुछ केमिकल्स खरीदने के लिए कलकत्ता आये थे। सान्डर्स वध १९२८ ई० की घटना है। उस समय भगत सिंह की कलकत्ता यात्रा में श्री कमलनाथ तिवारी (बाद में संसद सदस्य) उनके साथ इस खरीद्दारी में थे। श्री कमलनाथ तिवारी जी कहते हैं कि सान्डर्स हत्याकाण्ड से कुछ दिन पहले भगत सिंह देशी बम बनाने के लिये कुछ केमिकल्स खरीदने के उद्देश्य से कलकत्ता आये थे। यह काम मुझे सौंपा गया। उनका बाजार में जाना सन्देहास्पद हो सकता था। मैं बहुत-सी दुकानों पर गया। अधिकतर दुकानदारों ने सरकारी प्रतिबन्ध के कारण केमिकल्स देने से इन्कार कर दिया। बाद में क्रान्तिकारी दल से सहानुभूति रखनेवाले दुकानदारों के यहाँ मैं भाई बैजनाथ सिंह 'विनोद' के साथ गया। आवश्यक केमिकल्स मिल गये। उन केमिकल्स को एक मजदूर के सिर पर रखवा कर हम दोनों आर्यसमाज (आर्यसमाज कलकत्ता उस समय क्रान्तिकारियों का केन्द्र था) लौट रहे थे कि मजदूर की टोकरी उसके सिर से गिरने को हुई। हमने उसको ऐसे डाँट-डपट करनी शुरू कर दी जैसे कि हमारा उससे कोई सम्बन्ध ही न हो। बात यह थी कि सामने ही एक सर्जेन्ट खड़ा था, हमें भय हुआ कि यदि कहीं उसको केमिकल्स के बारे में सन्देह हो गया तो हम दोनों उसके चंगुल से बच न सकेंगे। हमारी डाँट-डपट काम आ गयी। मजदूर संभलकर आगे बढ़ गया और सर्जेन्ट का ध्यान उसकी ओर से हटकर हम पर लग गया। उसने हमको समझाया कि उस मामूली सी बात पर गरीब मजदूर को डाँटने की क्या जरूरत थी। थोड़ी दूर जाकर सामान रिक्शा पर रख दिया और हम दोनों सकुशल सामान के साथ आर्यसमाज पहुँच गये। दूसरे दिन सवेरे भगत सिंह, फणीन्द्रनाथ घोष (बाद में सरकारी गवाह) और यतीन्द्रनाथ दास (बाढ़ में शहीद) तीनों ने मिलकर देशी बम में काम आने वाली देशी गन काटन तैयार की। शेष केमिकल्स और गन काटन लेकर भगत सिंह आगरा के लिए रवाना हो गये। ('आर्यसमाज कलकत्ता का इतिहास', ले. उमाकान्त उपाध्याय, पृ. ७७-७८)

जनश्रुतियों में यह बात तो है कि सरदार भगत सिंह एसेम्बली बमकाण्ड से पूर्व दुर्गा भाभी के साथ कलकत्ता आये थे और आर्यसमाज मन्दिर में रहे थे, किन्तु सान्डर्स वध से पूर्व केमिकल्स खरीदने के उद्देश्य से कलकत्ता आने पर भी भगत सिंह आर्यसमाज मन्दिर में रुके थे, यह कलकत्ता के लोग भी कम जानते हैं। इससे एक बात सुस्पष्ट हो जाती है कि आर्यसमाज उस समय क्रान्तिकारियों का केन्द्र था। इस पवित्र वेदमन्दिर में क्रांतिकारी न केवल निवास की दृष्टि से अपने को निरापद समझते थे, अपितु कई-कई क्रान्तिकारी एक साथ इकट्ठे होकर क्रान्ति के कुछ कार्यों की योजना भी यहाँ कार्यान्वित करते थे। क्रान्तिकारियों के इस केन्द्र में और भी बहुत कुछ होता रहा होगा।

आर्यसमाज कलकत्ता में भगत सिंह द्वितीय प्रवास :

सरदार भगत सिंह दूसरी बार सान्डर्स वध के पश्चात् फरार होकर पुलिस की निगाहों से बचते हुए कलकत्ता आये थे। उस समय दुर्गा भाभी अपने पुत्र को लेकर भगत सिंह के साथ दिखावे के लिए

उनकी पत्नी का रूप धारण किये हुए कलकत्ता स्टेशन पर उत्तरी थीं। यह इतिहास-प्रसिद्ध घटना है कि पुलिस भगत सिंह को एक अविवाहित सिख नौजवान के रूप में ही पहचानती थी। पुत्र सहित दुर्गा भाभी जब उसके साथ लग गयी तो पुलिस की निगाहें यह दूर की भी सम्भावना न कर सकती थी कि यह नौजवान भगत सिंह हो सकता था।

उन दिनों सुशीला दीदी कलकत्ता में थी और सर सेठ छाजूराम से उनका परिचय था। सुशीला दीदी ने छाजूराम जी की पत्नी श्रीमती लक्ष्मीदेवी से वात की और भगत सिंह तथा दुर्गा भाभी को छाजूराम के बंगले में अतिथि के रूप में ले आयी। सर छाजूराम उन दिनों आर्यसमाज के कर्णधारों में थे। वे आर्यसमाज के ट्रस्टी और उस के प्रतिष्ठित अधिकारी भी थे। एक सप्ताह से अधिक वे वहीं रहे। भगत सिंह को वहाँ रखने की और निश्चिन्त रहने की स्वीकृति सेठ जी की पत्नी लक्ष्मीदेवी ने ही सुशीला दीदी को दी थी। इन लोगों को ऊपर की मंजिल में ठहराया गया था और उनके भोजन इत्यादि की व्यवस्था स्वयं लक्ष्मी देवी ही करती थी।

आगे इतिहास इतना ही बताता है कि छाजूराम जी की कोठी में एक सप्ताह रहने के बाद भगत सिंह को और अधिक सुरक्षित स्थान में स्थानान्तरित कर दिया गया। भगत सिंह कलकत्ता में 'हरि' नाम से अपना परिचय देते थे। भगत सिंह और दूसरे साथियों के लिये बाद में दूसरे सुरक्षित मकान का प्रबन्ध हो गया। कुछ दिन वे उसमें रहे और तब आगरा चले गये। इस से एक बात यह सुस्पष्ट हो जाती है कि कलकत्ता आकर भगत सिंह क्रान्तिकारी साथियों के सम्पर्क में आये थे। एक अतिथि तो छाजूराम जी की कोठी में अतिथि बनकर रह सकता था, किन्तु यह सेठ जी की कोठी क्रान्तिकारियों का अड्डा तो नहीं बन सकती थी। इसके लिये तो कोई अन्य स्थान ही उपयुक्त हो सकता था और वह स्थान क्रान्तिकारियों का केन्द्र आर्यसमाज मन्दिर ही था।

कलकत्ता आर्य समाज मन्दिर की छत पर दो कोनों पर गुम्बजनुमा दो कोठरियाँ थीं। इन्हीं दोनों में से एक कोठरी में भगत सिंह रहते थे। छत की कोठरी होने के कारण इनमें सुरक्षित होने का आश्वासन अधिक था। भगत सिंह का फ्लैट हैट वाला प्रसिद्ध चित्र यहीं आर्यसमाज कलकत्ता का है। इसी रूप में भगत सिंह 'हरि' नाम से यहाँ रहते थे। यहाँ से जाने से पूर्व एसेम्बली बमकाण्ड की मानसिक तैयारी भगत सिंह के मस्तिष्क में पूर्ण हो चुकी थी। अतः वे जब कलकत्ता से चले तो सुशीला दीदी ने तो उन्हें अपने रक्त से टीका किया था और आर्य समाज मन्दिर की छत की कोठरी ने एक बलिदानी वीर को जीवन के अन्तिम किन्तु अद्भुत कार्य के लिये मौन विदा दी थी।

भगत सिंह भी इस यात्रा के गौरव को समझते थे। उन्होंने आर्यसमाज के तत्कालीन सेवक तुलसीराम को अपना थाली और लोटा स्मृति के रूप में दिया था, पर सरल तुलसीराम उस रहस्यमय संकेत को कैसे समझ सकता! यहाँ से जाने पर एसेम्बली बमकाण्ड के पश्चात् जब सरदार भगत सिंह पकड़े गये और उनका फोटो समाचारपत्रों में छपा तब कलकत्ता के लोगों ने पहचाना कि यह वही नौजवान है जो यहाँ आर्यसमाज मन्दिर की छत पर रह कर गया है। तुलसीराम तो उस थाली-लोटे को अपनी अमूल्य निधि और पवित्र धरोहर मानकर रखता था। वह उसे दिखा तो देता था पर किसी को देने के लिये तैयार न था। तुलसीराम जब कलकत्ता छोड़ कर जाने लगा तब भी इस पवित्र स्मारक को अपने साथ लेता गया।

यहाँ एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि अमर हुतात्मा भगत सिंह दोनों बार कलकत्ता के आर्यसमाज मंदिर में ही क्यों ठहरे? पहली बार बम बनाने हेतु केमिकल्स खरीदने आये तो इस आर्यसमाज भवन में केवल ठहरे ही नहीं, अपितु क्रान्तिकारियों का मिलना-जुलना भी यहीं होता रहा, गन काटन भी यहीं बनायी गयी। इसका एक सहज-सा उत्तर यह हो सकता है कि सरदार भगत सिंह का तो परिवार ही आर्यसमाजी था और आर्यसमाज के वातावरण में ही स्वदेशभक्ति का नशा था। किन्तु यहाँ फणीन्द्रनाथ घोष और यत्तीन्द्रनाथ दास जैसे बंगाली क्रान्तिकारी भी गन-काटन आदि बनाने के लिये इकट्ठे हुए थे। ऐसा लगता है कि ये बंगाली युवक भी इस क्रान्ति-केन्द्र में सुरक्षा की दृष्टि से आश्वस्त थे।

द्वितीय बार चौधरी छाजूराम जी के आतिथ्य के पश्चात् अधिक सुरक्षा की दृष्टि से भगत सिंह आर्यसमाज मन्दिर में आ गये। यह आसानी से समझ में आ जाता है कि भगत सिंह स्वयं भी अपने पूर्व

क्रमशः पृष्ठ....७ पर

ऋषि दयानन्द-युगप्रवर्तक के साथ-साथ युगपरिवर्तक भी

ऋषि दयानन्द अपने युग की असाधारण विभूति थे

-भावेश मेरजा

विक्रम की २० वीं शताब्दी के युगप्रवर्तक भारतीय महापुरुषों में ऋषि दयानन्द का स्थान बहुत ऊंचा है। भारत जैसे रूढ़िवादी पददलित और पिछड़े हुए देश को विचार-स्वातन्त्र्य और आत्मसम्मान की गौरवमयी भावना से भरकर स्वतन्त्रता के पथ पर अग्रसर करने वालों में वे अग्रणी थे। उन्होंने आसेतु-हिमाचल प्रदेश को अपने अविश्रान्त प्रचार, भाषण और लेखन द्वारा हिला दिया।

महर्षि का जन्म काठियावाड़ प्रान्त के मौरबी प्रदेशान्तर्गत टंकारा नामक ग्राम में संवत् १८८१ सन् १८२५ ई., में हुआ था। उनके पिता कर्शनजी तिवारी एक सम्पन्न और सम्भ्रान्त व्यक्ति थे। किशोरावस्था में ही उनके हृदय में मूर्तिपूजा पर अनास्था हो गई थी। भगवान् बुद्ध की भांति वे भी युवावस्था के प्रारम्भ में ही अमरत्व और सच्चे शिव की खोज में घर से निकल पड़े। उसकी प्राप्ति के लिये संवत् १९०१-१९२० तक प्रायः बीस वर्ष हिमाच्छादित दुर्लङ्घ्य पर्वत-शिखरों, बीहड़ वन-प्रान्तों और तीर्थों में भ्रमण करते रहे। इस विशाल भ्रमण में उन्हें भारत के कोने-कोने में जाने और सधन-निर्धन, शिक्षित-अशिक्षित तथा सज्जन-दुर्जन प्रत्येक प्रकार के व्यक्तियों से मिलने और उन्हें वास्तविक रूप में देखने का अवसर मिला। इसीलिये ऋषि दयानन्द विदेशी साम्राज्य-विरोधी विचारधारा को जन्म देने में समर्थ हो सके और तत्कालीन भारतीय जनता की आशा-अभिलाषाओं का सफल प्रतिनिधित्व कर सके।

गुरु विरजानन्द द्वारा संस्कृत वाङ्मयरूपी समुद्र के मन्थन से समुपलब्ध आर्ष ज्ञान रूपी अमृत को प्राप्त कर ऋषि प्रचार के महान् कार्य क्षेत्र में उतरे। उन्होंने मौन रहने की अपेक्षा सत्य का प्रचार करना श्रेष्ठ समझा। उनका प्रचार कार्य प्रायः बीस वर्ष तक चला। इस काल के पहले दस वर्ष उन्होंने अवधूत अवस्था में बिताए। इन दिनों वे संस्कृत भाषा का ही व्यवहार करते थे। इस कारण साधारण जनता उनकी विचारधारा को पूर्णतया हृदयंगम नहीं कर पाती थी। यह अनुभव करके तथा ब्राह्मसमाज के प्रसिद्ध नेता केशवचन्द्र सेन के सत्परामर्श से ऋषि दयानन्द ने अपने प्रचार कार्य का माध्यम आर्य (हिन्दी) भाषा को बनाया।

ऋषि का कार्य :

इस महान् क्रान्तदर्शी मनीषी ने समस्त भारत में एक भाषा, एक धर्म और एक राष्ट्र की उदात्त कल्पना को चरितार्थ करने के लिये अपना शेष जीवन अर्पित कर दिया। आर्यों के विभिन्न सम्प्रदायों तथा ईसाई और मुसलमानों के धार्मिक नेताओं से वादविवाद किये। उनके प्रचण्ड खण्डन-मण्डन से समस्त सम्प्रदायों और मतों को युग के अनुरूप अपनी साम्प्रदायिक विचारधारा में परिवर्तन करने पड़े। इस से मध्यकालीन रूढ़िवादी विचारधारा को गहरा धक्का लगा।

विदेशी सभ्यता और संस्कृति के बढ़ते हुए प्रभाव से रक्षा करने के लिये उन्होंने एतद्देशवासियों में भारत के अतीत गौरव के प्रति आत्माभिमान को जागृत किया। भविष्यत् में इसी भावना ने विकसित होकर राष्ट्रवादी विचारधारा और स्वराज्यान्दोलन को आगे बढ़ाया।

ऋषि की जन्मभाषा गुजराती थी पर उन्होंने वर्षों तक केवल संस्कृत भाषा में भाषण, वार्तालाप और शास्त्रार्थ आदि किये थे, किन्तु जन साधारण को उससे विशेष लाभ होता न देख कर उन्होंने जन्मभाषा गुजराती और वर्षों से व्यवहृत देव-वाणी का मोह त्याग कर भाषण तथा लेखन का माध्यम आर्य (हिन्दी) भाषा को बनाया। उन्होंने अपने अनेक पत्रों में हिन्दी भाषा के लिये मातृभाषा और राष्ट्रभाषा शब्दों का प्रयोग उस समय किया, जब हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का ध्यान किसी को स्वप्न में भी नहीं आ सकता था। इस से ऋषि की दूरदर्शिता सूर्य की भांति विस्पष्ट है। हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का जो आन्दोलन आज चल रहा है, उसका मूल स्रोत ऋषि दयानन्द ही थे।

ऋषि ने अपना महान् क्रान्तिकारी ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश हिन्दी में ही लिखा। सत्यार्थप्रकाश का प्रथम संस्करण संवत् १९३२ में प्रकाशित हुआ था। उसमें अनेक प्रक्षेप होते हुए भी वह ऋषि को राष्ट्रिय और आर्थिक विचारों को जानने की कुंजी है।... इसके अतिरिक्त हिन्दी भाषा को उनकी सबसे बड़ी देन ऋग्वेद और यजुर्वेद के भाष्य हैं। वह प्रथम अवसर था, जब सर्वसाधारण हिन्दी-भाषाभाषी वेद जैसे प्राचीन, महत्त्वपूर्ण और धार्मिक ग्रन्थ को पढ़ने और जानने के लिये प्राप्त कर सके। उन्होंने वेद को केवल जन्मना ब्राह्मणों या पण्डितों की बपौती न रहने देकर सर्वसाधारण को सुलभ करने के

लिये यह पग उठाया था। वस्तुतः उनके इस कार्य का प्रमुख लक्ष्य था, जन साधारण को वेदिक-शिक्षा-दीक्षित करके उनकी कूपमण्डूकता को दूर करना। कहना न होगा कि इसमें उनको पर्याप्त सफलता मिली।

ऋषि के ग्रन्थों की भाषा खड़ी बोली है। उसमें यद्यपि जैसी व्याकरण-शुद्धता भले ही न मिले, तथापि वह ओजपूर्ण, व्यङ्ग-प्रबलता और प्रवाह से भरपूर है, पण्डिताऊपन उसमें नहीं है। भाषा में अविवेकपूर्ण कृत्रिम संस्कृतनिष्ठता की प्रवृत्ति का भी अभाव है। उसमें सरलता है, प्रसाद है और प्रवाह है, जो भाषा के सर्वोपरि गुण माने गये हैं। स्वामीजी के भाषण और लेखन से ही भारतेन्दु-युग के साहित्य मनीषियों को प्रेरणा मिली। उस समय के सभी साहित्यकों की रचनाएं प्रायः समाजसुधार और राष्ट्रियता की भावना से ओतप्रोत हैं। यदि कोई आर्य विद्वान् उस समय की प्रकाशित आर्य पत्र-पत्रिकाओं और आर्य साहित्य का अन्वेषण करके इस सम्बन्ध में प्रकाश डाले तो सहज ही में पता चल जायगा कि राष्ट्रभाषा के प्रचार में ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज का स्थान कितना महत्त्वपूर्ण है।

इस काल के समस्त वाङ्मय में मध्यकालीन रूढ़िवादी विचारधारा का नवीन प्रगतिशील सुधारवादी विचारधारा से संघर्ष परिलक्षित होता है। नवीन राष्ट्रभाषा और उसका वाङ्मय नवीन प्रगतिशील सुधारवादी विचारधारा को व्यक्त करने का साधन बना। ऋषि दयानन्द इस संघर्ष के उन्नायकों में अग्रणी थे। इसलिये हम ऋषि को युगप्रवर्तक के साथ-साथ युगपरिवर्तक भी मानते हैं।

इन सब बातों के साथ-साथ देश की शोचनीय आर्थिक परिस्थिति को दूर करने के लिये ऋषि ने गोरक्षा का महान् आन्दोलन किया। उनकी इच्छा थी कि भारत के तीन करोड़ नरनारियों के हस्ताक्षर कराकर महारानी विक्टोरिया की सेवा में एक शिष्टमण्डल भेजा जावे। इसके लिये उन्होंने लाखों व्यक्तियों के हस्ताक्षर कराये जिनमें राजा से लेकर रंक तक सभी वर्ग के व्यक्ति थे। महर्षि की असामयिक मृत्यु से यद्यपि उनका यह कार्य पूर्ण न हो सका, तथापि जनता में इसके लिये महती जागृति उत्पन्न हो गई। इसी प्रकार वे एतद्देशवासियों की निर्धनता को दूर करने के लिये भारतीय व्यक्तियों को जर्मनी आदि कला-कौशल-प्रवीण देशों में प्रौद्योगिक शिक्षा दिलाने का भी प्रयत्न कर रहे थे। उन्होंने वेदभाष्य में स्थान-स्थान पर यन्त्रों को उपयोग में लाने और उनके द्वारा सम्पत्ति बढ़ाने का उल्लेख किया है। इस प्रकार ऋषि दयानन्द ने साम्राज्यवादी शोषण-व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष के लिये राष्ट्र को चैतन्य करने का महान् प्रयत्न किया।

आगे चल कर आर्यसमाज ने गुरुकुल और कालेज आादि शिक्षा संस्थाएं खोलकर ऋषि के कार्य को कुछ आगे बढ़ाया। इनमें शिक्षित व्यक्ति ही प्रायः राष्ट्रिय आन्दोलन के वाहक बने।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ऋषि दयानन्द अपने युग की असाधारण विभूति थे। उन्होंने इस प्राचीन महान् देश के पिछड़े हुए जनसमाज को चहुंमुखी प्रगति के पथ पर अग्रसर करने का महान् ऐतिहासिक कार्य किया।

मारा हुआ धर्म कहीं तुम्हें न मार दें !

-जय रत्न आर्य

जिस प्रकार प्राणों के बिना मनुष्य जीवित नहीं रह सकता, उसी प्रकार धर्म (नैतिक आचरण) के बिना मनुष्य का भी कोई महत्त्व नहीं।

धर्म आचरण की वस्तु है। धर्म केवल प्रवचन और वाद-विवाद का विषय नहीं।केवल तर्क-वितर्क में उलझे रहना धार्मिक होने का लक्षण नहीं है। धार्मिक होने का प्रमाण यही है कि व्यक्ति का धर्म पर कितना आचरण है। व्यक्ति जितना-जितना धर्म पर आचरण करता है उतना-उतना ही वह धार्मिक बनता है। 'धृ धारणे' से धर्म शब्द बनता है, जिसका अर्थ है धारण करना। धर्म किसी संगठित लोगों के समुह का नाम नही न ही अभिमान व गर्व करने की वस्तु है ।

धर्म मनुष्य में शिवत्व/पवित्रता की स्थापना करना चाहता है।वह मनुष्य को पशुता के धरातल से ऊपर उठाकर मानवता की और ले जाता है और मानवता के ऊपर उठाकर उसे देवत्व की और ले-जाता है।यदि कोई व्यक्ति धार्मिक होने का दावा करता है और मनुष्यता और देवत्व उसके जीवन में नहीं आ पाते, तो समझिए कि वह धर्म का आचरण न करके धर्म का आडम्बर कर रहा है।

मनु महाराज के अनुसार धर्म की महिमा

वैदिक साहित्य में धर्म की बहुत महिमा बताई गई है। मनु महाराज ने लिखा है—

नामुत्र हि सहायार्थं पितामाता च तिष्ठतः ।
न पुत्रदारं न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः ।। -(मनु० ४/२३९)

अर्थात्—'परलोक में माता, पिता, पुत्र, पत्नि और गोती (एक ही वंश का) मनुष्य की कोई सहायता नहीं करते।वहाँ पर केवल धर्म ही मनुष्य की सहायता करता है।

एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ।।-(मनु० ४/२४०)

अर्थ—जीव अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही मृत्यु को प्राप्त होता है। अकेला ही पुण्य भोगता है और अकेला ही पाप भोगता है।

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः ।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ।। -(मनु० ८/१७)

अर्थ—धर्म ही एक मित्र है जो मरने पर भी आत्मा के साथ जाता है, अन्य सब पदार्थ शरीर के नष्ट होने के साथ ही नष्ट हो जाते हैं।

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ।। -(मनु० ४/२४१)

अर्थ-सम्बन्धी मृतक के शरीर को लकड़ी और ढेले के समान भूमि पर फेंककर विमुख होकर चले जाते हैं, केवल धर्म ही आत्मा के साथ जाता है।

धर्म के आचरण पर मनु महाराज ने बहुत बल दिया है—

अधार्मिको नरो यो हि यस्य चाप्यनृतं धनम् ।
हिंसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुखमेधते ।। -(मनु० ४/१७०)

अर्थ—जो अधर्मी, असत्य भाषी, अपवित्र व अनुचित तथा हिंसक है, वह इस लोक में सुख नहीं पाता।

न सीदन्नपि धर्मेण मनोऽधर्मे निवेशयेत् ।
अधार्मिकाणां पापानामाशु पश्यन्विपर्ययम् ।। -(मनु० ४/१७१)

अर्थ—धर्माचरण में कष्ट झेलकर भी अधर्म की इच्छा न करे, क्योंकि

क्रमशः पृष्ठ....६ पर

नास्तिकों के तर्कों की समीक्षा

-भूपेश आर्य

प्रश्न १. जब संसार बिना बनाये वाले के बन जाता है (बिना ईश्वर के) तो कुम्हार के बिना घड़ा और चित्रकार के बिना चित्र भी बन जाना चाहिए ?

प्रश्न २. जब ईश्वर नाम की कोई चीज नहीं तो जड़ प्रकृति कैसे गतिशील होगी? हमने देखा है कि जो भी प्रकृति से बनी अर्थात् भौतिक वस्तुएँ हैं, उनको अगर मनुष्य गति न दे तो वे एक जगह ही स्थिर रहती हैं। नास्तिकों के अनुसार जब प्रकृति चेतनवत् कार्य करती है (क्योंकि नास्तिकों की दृष्टि में ईश्वर नाम की कोई वस्तु नहीं और प्रकृति ही चेतनवत् कार्य करती है) तो प्रकृति से बनी भौतिक वस्तुओं को भी चेतनवत् कार्य करना चाहिए। अर्थात् कुर्सी को अपने आप चलकर बैठनेवाले के पास जाना चाहिए, भरी हुई या खाली बाल्टी को स्वयं चलकर यथास्थान जाना चाहिए। नल से अपने आप पानी निकलना चाहिए, साइकिल को अपने आप बिना मनुष्य के चलाये चलना चाहिए, लेकिन हम देखते हैं कि बिना मनुष्य के गति दिये कोई भी भौतिक पदार्थ स्वयं गति नहीं करता। फिर प्रकृति चेतन कैसे हुई?

प्रश्न ३. जब ईश्वर नाम की कोई सत्ता नहीं तो फिर कर्मों का भी कोई महत्त्व नहीं रह जाता, चाहे कोई अच्छे कर्म करे या बुरे, उसको कोई फल नहीं मिलेगा, वह आजाद है। क्योंकि ईश्वर कर्मफल प्रदाता है लेकिन नास्तिकों के अनुसार ईश्वर है ही नहीं तो फिर जड़ प्रकृति में इतनी सामर्थ्य नहीं कि किसी व्यक्ति को उसके कर्मों का अच्छा या बुरा फल दे सके। इस पर नास्तिक कहते हैं कि जो व्यक्ति दुःख या सुख भोग रहे हैं, वे स्वभाव से भोग रहे हैं। लेकिन यह बात तर्कसंगत नहीं क्योंकि यदि स्वभाव से दुःख, सुख भोगते तो या तो केवल दुःख ही भोगते या सुख, दोनों नहीं क्योंकि स्वभाव बदलता नहीं। और दूसरी बात यह है कि फिर कर्मों का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। फिर व्यक्ति चाहे अच्छे कर्म करे या बुरे, उनका कोई फल नहीं मिलेगा क्योंकि सुख-दुःख स्वभाव से हैं।

प्रश्न ४. जब नास्तिकों की दृष्टि में ईश्वर नहीं है तो फिर उनको कर्मों के फल का भी कोई डर नहीं रहेगा, चाहे कोई कितने ही पाप करें, कितनी ही दुष्टता करे, किसी का डर ही नहीं। क्योंकि जिसका डर था उसी को वे मानते नहीं और प्रकृति कर्मों के फल दे नहीं सकती।

प्रश्न ५. जब व्यक्ति पाप-कर्म (चोरी, जारी आदि) करता है तो उसके अन्तःकरण में भय, शङ्का, लज्जा आदि उत्पन्न होते हैं, ये ईश्वर की प्रेरणा से उत्पन्न होते हैं, इससे भी ईश्वर की सिद्धि होती है। क्योंकि प्रकृति जड़त्व के कारण इन विचारों को मनुष्य के अन्तःकरण में करने में असमर्थ है। क्योंकि ये भाव मनुष्य के अन्दर तभी उजागर होते हैं, जब वह पाप-कर्म करना आरम्भ करता है। इससे सिद्ध होता है कि परमात्मा ही उसके अन्दर ये भाव उजागर करता है। जिससे मनुष्य पाप-कर्म करने से बच जाये। फिर नास्तिक ईश्वर की मान्यता कैसे स्वीकार नहीं करते?

प्रश्न ६ जब किसी नास्तिक पर बड़ी आपत्ति या दुःख (रोगादि या अन्य) आता है तो हमने देखा है कि बड़े से बड़ा नास्तिक भी ईश्वर की सत्ता स्वीकार करने को विवश हो जाता है और ईश्वर के प्रति श्रद्धा रखते हुए कहता है कि—''हे ईश्वर! अब तो मेरे दुःख को दूर कर दो, मैंने कौन से बुरे कर्म किये हैं, जिनके कारण मुझे ये दुःख मिला है।'' जब नास्तिक ईश्वर को मानता ही नहीं तो दुःख के समय उसे ईश्वर और अपने बुरे कर्म क्यों याद आते हैं। पं० गुरुदत्त विद्यार्थी बड़े नास्तिक थे लेकिन स्वामी दयानन्द की मृत्यु के समय उन्हें भी ईश्वर की याद आई और पक्के आस्तिक बन गये। फिर नास्तिक क्यों ईश्वर को न मानने का ढोल पीटते हैं ? केवल दिखावे के लिए, जबकि परोक्ष रुप से वे ईश्वर की सत्ता स्वीकार करते हैं।

प्रश्न ७. जब नास्तिकों से प्रश्न किया जाता है कि मृत्यु को क्यों नहीं रोक लेते हो, तो वे कहते हैं कि ''टी.वी. क्यों खराब होती है, जैसे टी.वी. यन्त्रों का बना है ऐसे ही शरीर कोशिकाओं का बना है।'' ठीक है कौशिकाओं का बना है तो जब टी.वी. के यन्त्र बदलकर उसको सही कर देते हो तो मृत्यु होने पर शरीर के भी यन्त्र बदल दिया करो। जब टी. वी. खराब हुआ चल जाता है तो शरीर भी तो उसके यन्त्र बदलकर चलाया जा सकता है। लेकिन नहीं, बड़े से बड़ा वैज्ञानिक भी मृत्यु के बाद शरीर को चला नहीं सकता। क्यों? क्योंकि यह ईश्वर का कार्य है, जब टी.वी. आदि भौतिक चीजें खराब होने पर उनके यन्त्र, पुर्जे आदि बदलने पर चल जाता है तो शरीर भी उसके कोशिकाओं को बदलने पर चल जाना चाहिए? क्या कोई वैज्ञानिक शरीर के अन्दर की मशीनरी बना सकता है या प्रकृति मृत्यु के समय शरीर को ठीक क्यों नहीं करती, जब प्रकृति से बना शरीर है तो उसको प्रकृति को ठीक कर देना चाहिए (क्योंकि नास्तिकों के अनुसार प्रकृति ही गर्भ के अन्दर शरीर का निर्माण भी करती है, ईश्वर नहीं करता अर्थात् प्रकृति चेतनवत् कार्य करती है), फिर उस शरीर को अग्नि में क्यों जलाया जाता है? न प्रकृति उसको चला सकती, न वैज्ञानिक फिर नास्तिक क्यों प्रकृति और वैज्ञानिकों की रट लगाते हैं? जबकि सत्य यह है कि शरीर की मृत्यु 'आत्मा और शरीर का वियोग होना' है। इस सत्यता को नास्तिक क्यों नहीं स्वीकार करते?

प्रश्न ८. नास्तिक कहते हैं कि ज्ञान-विज्ञान वेदों में नहीं है, प्रत्युत् वैज्ञानिकों ने ही समस्त विज्ञान की रचना की है। मैं नास्तिकों से पूछता हूँ कि प्राचीन काल में ऋषि-मुनि एक से बढ़कर एक आविष्कार करते थे। ऋषि विश्वामित्र ने श्रीराम व लक्ष्मण को ब्रह्मास्त्र जैसे अनेक अस्त्र-शस्त्रों की शिक्षा दी थी। और उनका अनुसन्धान ऋषि-मुनि करते थे। क्योंकि उनके पास वेदों का ज्ञान-विज्ञान था। नास्तिक वैज्ञानिकों की दुहाई देते हैं, उस समय वैज्ञानिक नहीं थे, उस समय ऋषि-मुनि ही बड़े-बड़े आविष्कार करते थे। ऋषि-मुनि ही उस समय बड़े वैज्ञानिक थे। एक से एक विमान बनाते थे। रावण के पास ऐसा पुष्पक विमान था जो विधवाओं को अपने ऊपर नहीं बिठा सकता था अर्थात् विधवा औरत अगर उस पर विमान पर बैठ जाये तो वह उड़ नहीं सकता था। यह सब विवरण रामायण में 'त्रिजटा व सीता संवाद' में है, जिसका उसके स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती ने वाल्मीकि रामायण के भाष्य में किया है। पूरा विवरण इस प्रकार है-''जब युद्ध हो रहा था तो रावण के पुत्र इन्द्रजित् ने अदृश्य होकर सर्प के समान भीषण बाणों से, शरबन्ध से बाँध दिया और उनको मूर्छित कर दिया और हंसता हुआ अपने राजमहल में आया। रावण ने त्रिजटा-सहित सभी राक्षसियों को अपने पास बुलाया और कहा कि तुम जाकर सीता से कहो कि इन्द्रजित् ने राम और लक्ष्मण को युद्ध में मार डाला है, फिर उसे पुष्पक विमान में बैठाकर रण भूमि में मरे हुए उन दोनों भाइयों को दिखाओ। जिसके बल के गर्व से गर्वित होकर मुझे कुछ नहीं समझती उसका पति भाई सहित युद्ध में मारा गया। दुष्टात्मा रावण के इन वचनों को सुनकर और ''बहुत अच्छा'' कहकर वे राक्षसियाँ वहाँ गई जहाँ पुष्पक-विमान रखा था।

तत्पश्चात् त्रिजटा-सहित सीता को पुष्पक विमान में बैठा वे राक्षसी सीता को राम-लक्ष्मण का दर्शन कराने के लिए ले चलीं।

उन दोनों वीर भाइयों को शरशय्या पर बेहोश पड़े देखकर सीता अत्यन्त दुःखी हो, उच्च स्वर से बहुत देर तक विलाप करती रही।तब विलाप करती हुई सीता से त्रिजटा राक्षसी ने कहा-तुम दुःखी मत होओ। तुम्हारे पति मरे नहीं, जीवित हैं। हे देवी ! मैं अपने कथन के समर्थन में तुम्हें स्पष्ट और पूर्व-अनुभूत कारण बतलाती हूँ जिससे तुम्हें निश्चय हो जायेगा कि राम-लक्ष्मण जीवित हैं।—

इदं विमानं वैदेहि पुष्पकं नाम
नामतः ।
दिव्यं त्वां धारयेन्नैवं यद्येतौ
गतजीवितौ ।।

-(वा० रा०,युद्ध का०,सर्ग २८)

भावार्थ-हे वैदेहि ! यदि ये दोनों भाई मर गये होते तो यह दिव्य पुष्पक-विमान तुम्हें बैठाकर नहीं उड़ाता (क्योंकि यह विधवाओं को अपने ऊपर नहीं चढ़ाता।)

नोट-बीसवीं शताब्दी को विज्ञान का युग बताया जाता है, परन्तु वैज्ञानिक अब तक ऐसा विमान नहीं बना पाएँ हैं।

(स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती)

उस समय ऋषि-मुनियों के काल में ऐसे-ऐसे आविष्कार थे जिनकी नास्तिक कल्पना भी नहीं कर सकते। क्या आजकल वैज्ञानिक पुष्पक विमान जैसा आविष्कार कर लेंगे। कदापि नहीं। फिर नास्तिक क्यों वैज्ञानिकों की दुहाई देते हैं और ये क्यों नहीं मानते कि समस्त ज्ञान-विज्ञान के स्रोत वेद हैं। (इस विषय में एक लेख है मेरे पास-''प्राचीन भारत में विज्ञान की उज्ज्वल परम्परा'' वह अवश्य पढ़ें) ।

प्रश्न ९. अष्टाङ्ग योग द्वारा लाखों योगियों ने उस सृष्टिकर्तृता का साक्षात्कार किया है। ऋषि ब्रह्मा से लेकर जैमिनी तक अनेकों ऋषि-मुनि तथा राजा-महाराजा भी ईश्वर-उपासना किया करते थे और आज भी अनेकों लोगों की उस परम चेतन सत्ता में श्रद्धा है। वेद-शास्त्रों में भी मनुष्य का प्रथम लक्ष्य ईश्वर-प्राप्ति ही है। प्राचीनकाल में सभी ऋषि-मुनि, योगी, महापुरुष और सन्त लोग ईश्वर में अटूट श्रद्धा रखते थे तथा बिना सन्ध्योपासना किये भोजन भी नहीं करते थे। एक से बढ़कर ब्रह्मज्ञानी थे। उन लोगों वेद-शास्त्रों के अध्ययन से यही निचोड़ निकाला कि बिना ईश्वर-भक्ति के हमारा कल्याण नहीं हो सकता। और घण्टों तक समाधि लगाकर उस ईश्वर का साक्षात्कार किया करते थे और उस परमसत्ता की भक्ति से मिलनेवाले आनन्द में लीन रहते थे। वाकई जो ईश्वर-उपासना से आनन्द मिलता है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। तो जब करोड़ों, अरबों लोगों (ईश्वर-भक्तों) की उस परम चेतनसत्ता में श्रद्धा है तो कुछ तथाकथित नास्तिक कैसे ईश्वर की सत्ता को नकार सकते हैं या उनके न मानने से ईश्वर की सत्ता नहीं होगी? क्या ये करोड़ों-अरबों (ईश्वर-उपासक) लोग ईश्वर-उपासना में व्यर्थ का परिश्रम कर रहे हैं/रहे थे? इसका भी नास्तिक जवाब दें।

प्रश्न १० नास्तिक कहते हैं कि ईश्वर के बिना ब्रह्माण्ड अपने आप ही बन गया। इसका उत्तर यह है कि बिना ईश्वर के ब्रह्माण्ड अपने आप नहीं बन सकता। क्योंकि प्रकृति जड़ है और ईश्वर चेतन है। बिना चेतन सत्ता के गति दिये जड़ पदार्थ कभी भी अपने आप गति नहीं कर सकता। इसी को न्यूटन ने अपने गति के पहले नियम में कहा है—(Every thing persists in the state of rest or of uniform motion) until and unless it is compelled by some e-ternal force to change that state —Newton's First Law Of Motion) तो ये चेतन का अभिप्राय ही यहाँ E-ternal Force है ।

इस बात पर नास्तिक कहते हैं- ''E-ternal Force का अर्थ तो बाहरी बल है तो यहाँ पर आप चेतना का अर्थ कैसे ले सकते हो ?'' इसका उत्तर यह है-''क्योंकि ''बाहरी बल'' किसी बल वाले के लगाए बिना संभव नहीं । तो निश्चय ही वो बल लगाने वाला मूल में चेतन ही होता है । आप एक भी उदाहरण ऐसा नहीं दे सकते जहाँ किसी जड़ पदार्थ द्वारा ही बल दिया गया हो और कोई दूसरा पदार्थ चल पड़ा हो ।

अंग्रेजों को खटका आर्यसमाज

(राज विद्रोह के आरोप-पटियाले का अभियोग)

-पं. चमूपति जी

२३ जून १९०६ के 'सिविल ऐंड मिलिटरी गजट' में एक भारतीय का पत्र छपा जिस में सत्यार्थप्रकाश के उद्धरणों से प्रमाणित करने का यत्न किया गया कि आर्य समाज वास्तव में विदेशियों के बहिष्कार के लिए ही स्थापित हुआ है । उदाहरणतया सत्यार्थप्रकाश में लिखा था कि राज्य का अधिकार क्षत्रियों का है । अब क्षत्रिय भारत के बाहर का तो हो ही नहीं सकता । इस से विदेशी शासन का विरोध स्पष्ट है ! सत्यार्थप्रकाश में मनु के प्रमाण से लिखा है-

योऽवमन्येत द्विजो मूले
स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
स साधुभिर्वहिष्कार्यो नास्तिको
वेदनिन्दकः।।

इस से निस्सन्देह विदेशियों का भारत से बहिष्कार अभिप्रेत है!

"भारतीय" महोदय का सब से बुरा आक्षेप यह था कि ला० लाजपतराय के कारावास से आर्य समाज ने अपनी नीति बदल ली है। समाज की यह घोषणा कि वह एक विशुद्ध धार्मिक सभा है, इस कारावास का परिणाम है। लाहौर समाज की अन्तरंग सभा के १८८६ के निश्चय के आधार पर हम सिद्ध कर चुके हैं कि यह आप शुद्ध है । समाज की विशुद्ध धार्मिकता की घोषणा राजनैतिक घोषणा नहीं ।

इस लेख के उत्तर में म० मुंशीराम के तीन और प्रो. (इस समय सर) गोकुलचन्द नारंग एम० ए०, पी० एच० डी० का एक पत्र प्रकाशित हुआ । इन पत्रों में ऋषि की विश्व व्यापक शिक्षा की -जिस का किसी देश - विशेष से नहीं , किन्तु संसार भर की सभी जातियों से एक सा सम्बन्ध है-विशद व्याख्या की गई । दोनों महानुभावों ने प्रतिपादित किया कि वेद तथा दयानन्द का " क्षत्रिय" भारत का "खत्री" नहीं, किन्तु किसी भी देश का बांकुरा वीर है। प्रत्येक देश की बाग-डोर ऐसे ही लोगों के हाथ में होनी आवश्यक है। इन सब प्रश्नों पर आर्य समाज एण्ड इटस डिट्रैक्टर्स (Arya Samaj & its Detractors) में बड़ा प्रकाश डाला गया है। इस पुस्तक के लेखक महा मुंशीराम और रामदेव थे। यह पुस्तक पटियाला अभियोग की समाप्ति पर लिखी गई। इस पुस्तक की चर्चा बहुत रही। पार्लियामेण्ट के सदस्यों तक यह पहुँची। भारतीय सरकार (Government of India) की वार्षिक रिपोर्ट में इसका वर्णन था और विलायत के सुप्रसिद्ध पत्रों में भी इसकी चर्चा रही। विलायत के सुविख्यात त्रिमालिक पत्रिका Round Table में इस पुस्तक की समालोचना कई पृष्ठों में की गई। उस समय इस पुस्तक की बड़ी चर्चा थी। भारतवर्ष पर जिन योरोपियन महोदयों ने पुस्तकें लिखीं उनमें से बहुतों ने इसमें सउद्धरण दिए।

१९०८ तथा १९०९ के बच्छोवाली आर्य समाज के उत्सव के अवसर पर महा मुंशीराम के दो ऐतिहासिक व्याख्यान हुए । १९०८ के व्याख्यान में उन्हों ने निम्नलिखित घटनाओं का वर्णन किया :-

१. गुलाबचन्द एक सिख रजमेंट में लेखक था। वह कर्तव्य परायण तथा सत्य- प्रिय और परिश्रमी था। परन्तु साथ ही अधिकारियों को उत्तर देने में निर्भीक भी था। पहिले तो उस की इस बात की प्रशंसा होती परन्तु अब उस का यही गुण कांटे की तरह खटकने लगा और उसे इस लिए पृथक कर दिया गया कि वह "आर्य समाजी" है। इस प्रकार आर्य समाजी का अर्थ हुआ निर्भीक अर्थात् उद्दण्ड।

२. जि. करनाल के तीन जैलदारों में से एक आर्य समाजी था । उस की डायरी में लिख दिया गया कि वह जैलदार तो अच्छा है परन्तु उस का निरीक्षण किया जाना चाहिए क्योंकि वह आर्य समाजी है।

३. एक डिपुटी कमिश्नर ने एक स्थान के प्रमुख पुरुषों को बुला कर कहा कि यदि तुम्हारे यहाँ कोई आर्य समाजी रहता हो तो उसे निकाल दो । स्वयं उन प्रमुख पुरुषों ही में दो आर्य समाजी थे । उन्होंने पूछा कि आर्य समाजियों के विरुद्ध क्या किया जाय ? डिपुटी कमिश्नर ने कहा- "कुछ करो , तुम्हारे विरुद्ध कोई कार्यवाही न होगी।" वे बोले - आप स्पष्ट सहायता करें तो आज्ञा का पालन किया जा सकता है और यदि आप ही स्पष्ट कार्यवाही करने से डरते हैं तो फिर हम में यह साहस कहाँ?

४. एक रजीमेंट के सिपाही आर्य समाजी थे। उन्हें यज्ञोपवीत उतार देने की आज्ञा दी गई । वे जाति के जाट थे । उन्हों ने जाट सभा द्वारा निवेदन पत्र भिजवाया ।इसे आपत्ति जनक समझा गया।

५. एक मुसलमान जमादार ने एक यूरोपियन लेफटिनेंट को विवाद में हरा दिया। इस की शिकायत हुई और मुसलमान को डट कर कहा गया- तुम आर्य समाजी हो। उस ने उत्तर दिया- मैं तो मुसलमान हूँ। अधिकारी ने उसे और डटा और कहा- तुम मुसलमान आर्य समाजी हो।

६. आर्य समाज के प्रचारक पं० दौलतराम झाँसी गये। वहाँ उन्हों ने सिपाहियों को भी उपदेश किया और उन से अनाथालय के लिए चंदा लाये । उस पर अभियोग चलाया गया और दण्ड यह दिया गया कि या तो झाँसी या उस के पाँच मील के अन्दर रहने वाले तथा सरकार को ॅद्रिद्र) मालिया या २०००) की आय पर कर देने वाले दो सज्जनों की जमानतें दिलाए या १ वर्ष कठोर कारावास का दण्ड भुगते । यों तो दौलतराम आगरा के खाते-पीते घर का था परन्तु झाँसी में वह अजनबी-सा था । इस लिए उसे कारा वास भुगतना पड़ा ।

७. जोधपुर में वायसराय महोदय पधारे थे । उन के मार्ग में समाज मन्दिर पड़ता था । पोलीस ने समाज वालों से कहा- अपना फट्टा तथा झंडा उतार लो। उन के इनकार करने पर पोलीस ने स्वयं ये दोनों चिह्न उतार लिये । ये सब घटनाएँ समाज के प्रति उस समय के कुछ सरकारी कर्मचारियों की कठोर दृष्टि पर स्पष्ट प्रकाश डाल रही हैं । समाज के अधिकारी सरकार से मिलते नहीं थे और सरकार इन की इस झिझक को सन्देह की दृष्टि से देखती थी। महात्मा जी ने अपने व्याख्यान में समाज की स्थिति एक संन्यासी की बतलाई जिस का प्रचलित राजनीतिक आन्दोलनों से कुछ सम्बन्ध नहीं । समाज राजा - प्रजा दोनों के प्रति अपना कर्तव्य पालन कर देगा पर झुकेगा किसी के श्रागे भी नहीं । जोधपुर की घटना का वर्णन करते हुए जब महात्मा जी ने कहा- ओ३म् का झंडा हमारे हृदयों पर आरोपित है, संसार की सब दिशाओं में ओ३म् अंकित है सब शक्तियों, सब क्रियाओं पर ओ३म् की शोभा है इस ओ३म् को कौन मिटा सकता है ? यह सुनते ही जनता पर एक समाँ बँध गया । हृदय बल्लियों उछलने लगे । निरुत्साह हृदयों को साहस तथा धैर्य मिला । महात्मा जी का शब्द शब्द सच्ची धर्म-भावना में भीजा हुआ था । उस में गर्व तो था पर विनय से सुशोभित । उस में विनय था पर आत्मा भिमान से विभूषित।

इस राजविद्रोह काण्ड की कुछ और घटनाएँ भी उल्लेख के योग्य हैं :

पंजाब की एक ब्रिगेड में आज्ञा दी गई कि आर्य समाज अथवा किसी अन्य राजनैतिक सभा में न जाया करें ।

एक भारतीय रजीमेंट के एक डाक्टर को उस के आफिसर ने त्याग-पत्र का मसविदा लिख कर दिया कि इस के द्वारा समाज से संबन्ध विच्छेद कर लो । यह आज्ञा न मानने के कारण आखिर उसे सेवा छोड़नी पड़ी ।

रोहतक में किसी ने डौंडी पिटवा दी कि आर्य समाज का मन्दिर सरकार ने जब्त कर लिया है । समाज के प्रधान के पूछने पर डिपुटी कमिश्नर के कार्यालय ने लिखा कि ऐसी डौंडी सरकार की आशा से नहीं पीटी गई परन्तु तो भी इस के विरुद्ध सरकार ने अपनी ओर से घोषणा तक करना स्वीकार नहीं किया ।

इन्द्रजित् शाहजहाँपुर की जिला - कचहरी में काम करता था । उस ने रोगी होने के कारण अवकाश लिया । वह आर्य समाज का उत्साही कार्यकर्तृता था उसे आज्ञा दी गई कि या तो समाज का प्रचार करे या सरकार की सेवा ।

इन्दौर आर्य समाज का प्रधान लक्ष्मणराव शर्मा पोलीस के इन्स्पेक्टर जनरल के कार्यालय में हैड एकोटैंट था । उसने समाज के जलूस की आज्ञा माँगी । इस पर उसे समाज छोड़ देने को कहा गया ।ऐसा न कर सकने के कारण उसे सरकार की सेवा छोड़ देनी पड़ी ।

ये केवल उदाहरण हैं। इन से स्पष्ट है कि आर्य समाजी होना उन दिनों कितने जोखिम का काम था। आर्य पुरुष कुछ बहुत धनवान् नहीं थे। उन की आजीविका साधारण थी। परन्तु अब वह साधारण आजीविका भी सुरक्षित न थी। धर्म उस की भी बलि माँगता था। सचमुच वे लोग धन्य थे जिन्हों ने धन की, जन की , तथा मन की यह बलि खुशी खुशी दे दी। उन का वह धर्म वास्तव में बहुमूल्य था, जिसे उन्हों ने अपनी बहुमूल्य बलि के दामों खरीदा। कोई जेल में डाल दिया गया, इस लिए कि वह आर्य समाजी है । किसी के बाल बच्चों तक की रोटी छीन ली गई , इस लिए कि वह वेद और दयानंद का भक्त है। यह भक्ति कैसी महंगी थी? कितने आत्मोत्सर्ग से कमाई गई?

●●●

पृष्ठ.....४ का शेष

अधार्मिकों की धन-सम्पत्ति शीघ्र ही नष्ट होती देखी जाती है।

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव ।
शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति ।। -(मनु० ४/१७२)

अर्थ-संसार में अधर्म शीघ्र ही फल नहीं देता, जैसे पृथिवी बीज बोने पर तुरन्त फल नहीं देती।वह अधर्म धीरे-धीरे कर्तृता की जड़ों तक को काट देता है।

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति ।
ततः सपत्नाॅंजयति समूलस्तु विनश्यति ।।-(मनु० ४/१७४)

अर्थ—अधर्मी प्रथम तो अधर्म के कारण उन्नत होता है और कल्याण-ही-कल्याण पाता है, तदन्नतर शत्रु-विजयी होता है और समूल नष्ट हो जाता है।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ।। -(मनु० ८/१५)

अर्थ—मारा हुआ धर्म मनुष्य का नाश करता है और रक्षा किया हुआ धर्म मनुष्य की रक्षा करता है।इसलिए धर्म का नाश नहीं करना चाहिए, ऐसा न हो कि कहीं मारा हुआ धर्म हमें ही मार दे !

वृषो हि भगवान् धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम् ।
वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत् ।। -(मनु० ८/१६)

अर्थ—ऐश्वर्यवान् धर्म सुखों की वर्षा करने वाला होता है। जो कोई उसका लोप करता है, देव उसे नीच कहते हैं, इसलिए मनुष्य को धर्म का लोप नहीं करना चाहिए।

चला लक्ष्मीश्चला प्राणाश्चलं जीवितयौवनम् ।
चलाचले हि संसारे धर्म एको हि निश्चलः ।।

अर्थ—धन, प्राण, जीवन और यौवन—ये सब चलायमान हैं। इस चलायमान संसार में केवल एक धर्म ही निश्चल है।

प्रश्न उठता है कि जिस धर्म की इतनी महिमा कही गई है, वह धर्म क्या है ? इस सन्दर्भ में मनु महाराज का श्लोक ध्यान देने योग्य है—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ।। -(मनु० ६/९२)

अर्थ—धीरज, हानि पहुँचाने वाले से प्रतिकार न लेना, मन को विषयों से व, चोरी न करना, मन को राग-द्वेष से परे रखना, इन्द्रियों को बुरे कामों से बचाना, मादक द्रव्य नशा आदि का सेवन न करके बुद्धि को पवित्र रखना, ज्ञान की प्राप्ति, सत्य बोलना और क्रोध न करना-ये धर्म के दस लक्षण हैं।

पृष्ठ.....१ का शेष

उन्होंने योगाभ्यास के द्वारा समाधि अवस्था में ईश्वर का साक्षात्कार किया था। वह वेदों के विद्वान थे। उन्होंने वेदों पर न केवल ग्रन्थ ही लिखे हैं अपितु वेदों का भाष्य भी किया है। आक्समिक मृत्यु के कारण वह वेद भाष्य के महद् कार्य को पूर्ण नहीं कर सके। उन्होंने ऋग्वेद के आंशिक वा आधे से कुछ अधिक तथा यजुर्वेद का सम्पूर्ण भाष्य किया है। चतुर्वेद विषयसूची लिखकर उन्होंने चारों वेदों के भाष्य की अपनी पूरी योजना प्रस्तुत की थी जो अन्य परवर्ती विद्वानों के लिये भी उपयोगी रही है। वेद सब सत्यविद्याओं की पुस्तक हैं। वेद ईश्वर से उत्पन्न ईश्वर व सृष्टि विषयक परा व अपरा विद्याओं का सत्य ज्ञान है। ऋषि दयानन्द वेद सहित सभी विद्याओं में पारंगत थे। अतः उनका बनाया सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ अन्य मनुष्यों व विद्वानों द्वारा रचे गये ग्रन्थों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं उच्च स्थान रखता है। इस ग्रन्थ की महत्ता का ज्ञान तो इसका अध्ययन करने पर ही होता है। यदि सभी मतों के लोग अपने ग्रन्थों को पढ़ते हुए भी इस सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ को निष्पक्ष होकर पढ़े तो उन्हें भी इसमें ऐसी अनेक बातें प्राप्त होंगी जो उनके मतों में नहीं है। मनुष्य जीवन को इसके लक्ष्य ''मोक्ष'' तक पहुंचाने के लिये वेदों सहित सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ का अध्ययन करना हमें सर्वथा आवश्यक लगता है। जो भी व्यक्ति निष्पक्ष होकर इस ग्रन्थ का अध्ययन करता है वह इसी निष्कर्ष पर पहुंचता हैं।

सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ की भूमिका में ग्रन्थ रचना का उद्देश्य बताने के बाद स्वामी दयानन्द ने अत्यन्त महत्वपूर्ण बातें लिखी हैं जो सबके जानने के योग्य हैं। वह लिखते हैं कि मनुष्य का आत्मा सत्याऽसत्य का जानने वाला है तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ कर असत्य में झुक जाता है। परन्तु इस सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं रक्खी है और न किसी का मन दुखाना वा किसी की हानि पर तात्पर्य है, किन्तु जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्याऽसत्य को मनुष्य लोग जान कर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें, क्योंकि सत्योपदेश के विना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नही है।

सत्यार्थप्रकाश की महत्ता के अनेक कारण हैं। सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में लिखे स्वामी दयानन्द जी के यह शब्द भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं 'यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं, वे पक्षपात छोड़ सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् जो-जो बातें सब के अनुकूल सब में सत्य हैं, उनका ग्रहण और जो एक दूसरे से विरुद्ध बातें हैं, उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्ते और वर्तावें तो जगत का पूर्ण हित हो। क्योंकि (मत-मतान्तरों व इतर) विद्वानों के विरोध से अविद्वानों में विरोध बढ़ कर अनेकविधि दुःख की वृद्धि और सुख की हानि होती है। इस हानि ने, जो कि स्वार्थी मनुष्यों को प्रिय है, सब मनुष्यों को दुःखसागर में डूबा दिया है।' ऋषि दयानन्द इसके आगे कहते हैं 'इनमें से जो कोई सार्वजनिक हित लक्ष्य में धर कर प्रवृत्त होता है, उससे स्वार्थी लोग विरोध करने में तत्पर होकर अनेक प्रकार के विघ्न करते हैं। परन्तु 'सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।' अर्थात् सर्वदा सत्य का विजय और असत्य का पराजय और सत्य ही से विद्वानों का मार्ग विस्तृत होता है। इस दृढ़ निश्चय के आलम्बन से आप्त लोग परोपकार करने से उदासीन होकर कभी सत्य अर्थ का प्रकाश करने से नहीं हटते।' स्वामी दयानन्द जी ने जीवन भर अपने इन वचनों का पालन किया। बरेली में जब उनके द्वारा असत्य का खण्डन करने से रोकने का प्रयास किया गया तो उन्होंने 'सिंह-घोषणा' की थी और कहा था कि जब तक संसार में ऐसा सूरमा सामने नहीं आता जो यह कहे कि वह मेरी आत्मा का नाश अर्थात् मेरी आत्मा का अभाव कर देगा, तब तक मैं असत्य का खण्डन न करने के प्रस्ताव पर विचार भी नहीं कर सकता।

सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में इसके बाद भी ऋषि दयानन्द ने अनेक महत्वपूर्ण बाते लिखी हैं। वह कहते हैं कि 'यह बड़ा दृढ़ निश्चय है कि 'यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।' यह गीता का वचन है। इसका अभिप्राय यह है कि जो-जो विद्या ओर धर्म-प्राप्ति के कर्म हैं, वे प्रथम करने में विष के तुल्य और पश्चात् अमृत के सदृश होते हैं। ऐसी बातों को चित्त में धरके मैंने इस ग्रन्थ को रचा है। श्रोता वा पाठकगण भी प्रथम प्रेम से देख के इस (सत्यार्थप्रकाश) ग्रन्थ का सत्य-सत्य तात्पर्य जान कर (उनके जनहितकारी उद्देश्य को पूरा व) यथेष्ट करें। इसमें यह अभिप्राय रक्खा गया है कि जो-जो सब मतों में सत्य-सत्य बातें हैं, वे वे सब में अविरुद्ध होने से उनका स्वीकार करके जो-जो मतमान्तरों में मिथ्या बातें हैं, उन-उन का खण्डन किया है। इसमें यह भी अभिप्राय रक्खा है कि सब मतमतान्तरों की गुप्त वा प्रकट बुरी बातों का प्रकाश कर विद्वान् अविद्वान् सब साधारण मनुष्यों के सामने रक्खा है जिससे सब (मनुष्यों) से सब (बातों) का विचार होकर परस्पर प्रेमी हो के एक सत्य मतस्थ होवें।'

सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में कही एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात को भी हम यहां प्रस्तुत करना आवश्यक समझते हैं। वह कहते हैं 'यद्यपि मैं आर्यावर्त देश में उत्पन्न हआ और वसता हूं, तथापि जैसे इस देश के मतमतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर याथातथ्य प्रकाश करता हूं वैसे ही दूसरे देशस्थ वा मत वालों के साथ भी वर्तता हूं। जैसा स्वदेश वालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में वर्तता हूं, वैसा विदेशियों के साथ भी तथा सब सज्जनों को भी वर्तना योग्य है। क्योंकि मैं भी जो किसी एक का पक्षपाती होता तो जैसे आजकल के (लोग) स्वमत की स्तुति, मण्डन और प्रचार करते और दूसरे मत की निन्दा, हानि और बन्ध करने में तत्पर होते हैं, वैसे मैं भी होता, परन्तु ऐसी बातें मनुष्यपन (Huminity) से बाहर हैं। क्योंकि जैसे पशु बलवान् होकर निर्बलों को दुःख देते ओर मार भी डालते हैं, जब मनुष्य शरीर पाके वैसा ही कर्म करते हैं तो वे मनुष्य स्वभावयुक्त नहीं, किन्तु पशुवत् हैं। और जो बलवान् होकर निर्बलों की रक्षा करता है वही मनुष्य कहाता है और जो स्वार्थवश होकर परहानि मात्र करता रहता है, वह जानो पशुओं का भी बड़ा भाई है।'

ऋषि दयानन्द ने जिन दिनों वेद व वैदिक मान्यताओं का प्रचार किया था उन दिनों देश व विश्व अज्ञान व अन्धविश्वासों से युक्त तथा सद्ज्ञान व आध्यात्मिक सत्य ज्ञान से कोसों दूर था। उस समय आवश्यकता थी कि सब सच्चे विद्वान एक डाक्टर द्वारा रोगी का उपचार करने की भांति सबको सद्ज्ञान व सद् उपदेश देते। एक सच्चे व योग्य चिकित्सक के कर्तव्य का ही पालन ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश लिखकर व वेद प्रचार कर किया है। यदि वह ऐसा न करते तो आने वाली मनुष्य जाति सत्यासत्य के विवेक से वंचित रहती। उन्हें सत्य धर्म व सत्य मत का कभी बोध ही नहीं होता। ऋषि दयानन्द ने जो कार्य किया वह ईश्वर की आज्ञा का पालन ही था। सभी सच्चे विद्वानों, आचार्यों व उपदेशकों का उद्देश्य व कर्तव्य सत्य मान्यताओं का प्रचार करना ही होता है। ऋषि दयानन्द ने अपना कर्तव्य बहुत ही अच्छी प्रकार से निभाया है। इससे विश्व का उपकार हुआ है। लोगों को मत-मतान्तरों के सत्यस्वरूप व उनमें निहित अविद्या व अन्धविश्वासों का बोध हुआ। कुछ लोग असत्य मतों को छोड़कर सत्य मत को भी प्राप्त हुए हैं। ऋषि दयानन्द ने जो कार्य किये, सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य- भूमिका, वेदभाष्य आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की, उससे भावी पीढ़ियों को सत्य मार्ग का बोध होगा जिस पर चलकर वह धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को प्राप्त हो सकते हैं। सत्यार्थप्रकाश की अनेक विशेषतायें हैं। इस कारण से यह विश्व का सर्वोत्तम ग्रन्थ है। सत्यार्थप्रकाश मनुष्य मात्र के लिये हितकारी व सन्मार्ग को प्राप्त कराने वाला है तथा ईश्वर व आत्मा का सत्य ज्ञान कराकर लोगों को उपासना व साधना द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार कराने में सहयोगी है जिससे मनुष्यों के सभी दुःखों की निवृत्ति होकर मोक्ष प्राप्त होता है।

क्या सांख्यकार कपिल मुनि अनीश्वरवादी थे?

-स्वामी धर्मानन्द

माननीय डॉ. अम्बेदकरजी से गत २७ फर्वरी को मेरी जब उनकी कोठी पर बातचीत हुई तो उन्होंने यह भी कहा कि सांख्यदर्शन में ईश्वरवाद का खण्डन किया गया है। यही बात अन्य भी अनेक लेखकों ने लिखी है किन्तु वस्तुतः यह अशुद्ध है। सांख्य दर्शन में ईश्वर के सृष्टि के उपादान कारणत्व का निम्न सूत्रों द्वारा खण्डन किया गया है उसका यह अर्थ समझ लेना कि यह ईश्वरवाद मात्र का खण्डन है, अशुद्ध है। उदाहरणार्थ निम्न सूत्रों को देखिए-

तद्योगेऽपि न नित्य मुक्तः।। सांख्य ५/७

अर्थात् यदि ईश्वर को इस सृष्टि का उपादान कारण माना जाएगा तो ईश्वर नित्य मुक्त नहीं समझा जाएगा, क्योंकि उपादान कारण मानने से उसमें रागादि की प्रवृत्ति माननी पड़ेगी जो नित्य मुक्त में नहीं हो सकती।

प्रधान शक्ति योगाच्चेत् संगापत्तिः।। सांख्य ५/८

अर्थात् यदि ईश्वर और प्रकृति की शक्ति का योग मान लिया जाए तो संग की प्राप्ति से अन्योन्याश्रय होगा। ईश्वर को किसी आश्रय की आवश्यकता नहीं।

सत्तामात्राच्चेत् सर्वैश्वर्यम्।। सांख्य ५/९

अर्थात् यदि ईश्वर को इस जगत् का उपादान कारण माना जाए तो ईश्वर में गुण (सर्वज्ञादि) हैं वे इस जगत् में भी होने चाहियें परन्तु ऐसा देखने में नहीं आता। इसलिये ईश्वर इस सृष्टि का उपादान कारण नहीं, निमित्त कारण मात्र है।

प्रमाणाभावान्न तत्सिद्धिः।। सांख्य ५/१०

प्रत्यक्ष प्रमाण के न होने से ईश्वर को जगत् का उपादान कारण नहीं किया जा सकता।

सम्बन्धाभावान्नानुमानम्।। सांख्य ५/११

अर्थात् अनुमान प्रमाण द्वारा भी सिद्ध नहीं किया जा सकता कि ईश्वर जगत् का उपादान कारण है क्योंकि बिना प्रयोजन के कोई कार्य नहीं होता और ईश्वर में प्रयोजन का अभाव है। ऐसी अवस्था में ईश्वर को जगत् का उपादान कारण नहीं माना जा सकता।

श्रुतिरपि प्रधानकार्यत्वस्य।। सांख्य ५/१२

अर्थात् श्रुति भी प्रधान व प्रकृति से सृष्टि का होना मानती है।

अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां स्वरूपाः।
अजोह्येको जुषमाणोऽनु शेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः।।

इत्यादि वचनों में प्रकृति को ही जगत् का उपादान कारण बताया गया है न कि परमेश्वर को।

सांख्यशास्त्र में ईश्वर की सत्ता के प्रतिपादक सूत्र

उपर्युक्त सूत्रों के आधार पर किसी को यह भ्रम न हो जाए कि सांख्यदर्शन में ईश्वर के अस्तित्व का खण्डन किया गया है निम्नलिखित सूत्रों का निर्देश करना हमें प्रसङ्ग वश आवश्यक प्रतीत होता है।

अकार्यत्वेऽपितद् योगः पारवश्यात्।। सांख्य ३/५५

प्रश्न यह है कि प्रकृति को सृष्टि का उपादान कारण क्यों माना गया है? इसका उत्तर इस सूत्र में दिया गया है। प्रकृति को सृष्टि का उपादान कारण इसलिये माना गया है क्योंकि वह परवश है और जो परवश होता है उसे ही काम करना पड़ता है इसलिए प्रकृति को ही सृष्टि करने का योग है।

स हि सर्ववित् सर्व कर्ता।। सांख्य ३/५६

अर्थात् (सः) वह परमेश्वर (हि) निश्चय से (सर्ववित्) सर्वज्ञ है (सर्व कर्ता) सबका कर्ता है। प्रेंति तो इस सृष्टि का उपादान कारण है और जो परमात्मा सर्वज्ञ है वह सबका नैमित्तिक कारण है।

ई-शेश्वर सिद्धिः सिद्धा।। सांख्य ३/५७

अर्थात् इसप्रकार के ईश्वर की सिद्धि सिद्ध है। इस प्रकार के सर्वज्ञ ईश्वर की सिद्धि स्पष्ट है जो इस सृष्टि का नैमित्तिक कारण है, वह सृष्टि का उपादान कारण नहीं।

ईश्वर का स्वरूप

सांख्य दर्शन के निम्न सूत्रों में ईश्वर के स्वरूप का स्पष्ट प्रतिपादन है-

व्यावृत्तोभय रूपः।। सांख्य १/१६०

अर्थात् ईश्वर प्रकृति और पुरुष (आत्मा) से भिन्न है।

साक्षात् सम्बन्धात् साक्षित्वम्।। सांख्य १/१६१

अर्थात् प्रकृति और जीवात्मा के साथ सम्बन्ध होने से और उनका अधिपति होने से ईश्वर उनका साक्षी है- वह उनके कार्य का निरीक्षक है जैसे कि वेद में भी कहा है-

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।। ऋ० १/१६४/२

अर्थात् दो पक्षी (परमात्मा और जीवात्मारूपी) अनादि होने से समान प्रकृतिरूप वृक्ष पर मानो बैठे हैं। वे दोनों परस्पर मित्र हैं। उनमें से एक (जीवात्मा) वृक्ष के फल को खा रहा है और दूसरा (परमात्मा) उसे देख रहा है। साक्षी है।

नित्यमुक्तत्वम्।। सांख्य १/१६२

वह ईश्वर नित्य मुक्त है। इस विषय में योगदर्शन में कहा है- ''क्लेश कर्म विपाकाशयैर परामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।।''

औदासीन्यं चेति।। सांख्य १/१६३

वह परमात्मा उदासीन वृत्तिवाला है, अर्थात् पक्षपातरहित है। वह न्यायकर्ता है और किसी का पक्ष नहीं लेता।

उपरागात् कर्तृत्वं चित्सान्निध्यात् चित्सान्निध्यात्।। सांख्य १/१६४

अर्थात् प्रकृति और जीवात्मा के साथ सम्बन्ध होने से उस परमात्मा की कर्तृत्व शक्ति का प्रसार दिखलाई देता है, अर्थात् वह ईश्वर इस सृष्टि का कर्ता, पालक, पोषक और संहारक है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सांख्यदर्शन के कर्ता कपिल मुनि अनीश्वरवादी न थे। उनके नाम से अनीश्वरवाद का समर्थन करना उनके साथ घोर अन्याय करना है। सांख्यदर्शन के यथार्थ तत्त्व को जो विशेषरूप से जानना चाहते हैं उन्हें स्वामी हरिप्रसादजी कृत 'सांख्यसूत्र वैदिक वृत्ति' और श्री गोपालजी बी.ए. कृत 'सांख्य सुधा' (प्राच्य साहित्य मण्डल १५ हनुमान् रोड नई देहली द्वारा प्रकाशित) इत्यादि पुस्तकों का अनुशीलन करना चाहिए। विस्तार भय से हम इस प्रसंगागत विषय को यहीं समाप्त करते हैं।

प्रस्तुति- प्रियांशु सेठ

पंजी०सं० आर.एन.आई.-२२४१/५७ -आर्यमित्र २० एवं २७ मार्च, २०२५ पोस्टल रजि.जी.पी.ओ. लखनऊ/एन.पी.-१४/२०१६-२१ एक प्रति ₹ ५.००

आर्य मित्र
नारायण स्वामी भवन, ५-मीराबाई मार्ग, लखनऊ दूर./फैक्सः ०५२२-२२८६३२८
प्रधान-०९४१२६७८५७१, मंत्री-०९४१५३६५५७६, सम्पादक-९४५१८८१९७७
ई.मेल-apsabhaup86@gmail.com

सेवा में,

.....

.....

वेद की दृष्टि में जल अमृतरूप औषधि है

(विश्व जल दिवस पर प्रकाशित)

-प्रियांशु सेठ

वेद के अनेक मन्त्र जल को आरोग्य, दीर्घजीवी व बल का संवर्धन करनेवाला इत्यादि बताते हुए जल की महत्ता का वर्णन करते हैं। वेदज्ञों की दृष्टि में जल को एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है किन्तु जल का आवश्यकता से अधिक प्रयोग या अनावश्यक प्रयोग करने वाला आज का भौतिकवाद जल की महत्ता से पूर्णतः अपरिचित है। उन्हें जल के चमत्कारों से परिचित व उनके बचाव के प्रति जागृत केवल वेद ही कर सकता है। आइए, इस लेख के माध्यम से जल की उपयोगिता वेद की दृष्टि में जानें-

आपोऽअस्मान् मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूतऽएमि।
दीक्षातपसोस्तनूरसि तां त्वा शिवाः शग्मां परिदधे भद्रं वर्ण पुष्यन्।। -यजु० ४/२

महर्षि दयानन्दजीकृत भाष्य- इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। मनुष्यों को उचित है कि जो सब सुखों को प्राप्त करने, प्राणों को धारण करने तथा माता के समान पालन के हेतु जल हैं, उनसे सब प्रकार पवित्र होके, इनको शोध कर मनुष्यों को नित्य सेवन करने चाहियें, जिससे सुन्दर वर्ण, रोगरहित शरीर को सम्पादन कर निरन्तर प्रयत्न के साथ धर्म का अनुष्ठान कर पुरुषार्थ से आनन्द भोगना चाहिए।

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये। देवा भवत वाजिनः।। -ऋग्० १/२३/१९

अर्थ- (अप्सु अन्तः अमृतं) जल के भीतर अमृत है, (अप्सु भेषजं) जल में औषधि गुण है (उत अपां प्रशस्तये) ऐसे जलों की प्रशंसा करने के लिए (देवाः वाजिनः भवत) हे देवों! तुम उत्साही बनो।

इदमापः प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि। यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेष उतानृतम्।। -ऋ०१/२३/२२

अर्थ- (आपः) हे जलो! (यत् किंच) जो कुछ भी (दुरितम्) अशुभ आचरण (मयि) मेरे जीवन में है (इदम्) इसको (प्रवहत) बहाकर दूर ले जाओ। जल शरीर के रोगों को ही दूर करते हों, सो नहीं, इनका मानस रोगों पर भी प्रभाव पड़ता है। क्रोध में आए हुए मनुष्य को अब तक ठण्डा पानी पीने के लिए देने की प्रथा है। पानी रोगों को ही नहीं, क्रोध को भी दूर कर देता है। वस्तुतः स्वास्थ्य को प्राप्त कराके जल मन को भी स्वस्थ बनाते हैं। मन के स्वस्थ होने पर सब दुरित दूर ही रहते हैं। हे जलो! (यद् वा) और जो (अहम्) मैं (अभिदुद्रोह) किसी के प्रति द्रोह करता हूँ, ये जल उस द्रोह-भाव को भी दूर करें। हमारे मनों में किसी की जिघांसा की भावना न हो। (यद् वा) और जो मैं (शेपे) क्रोध में आक्रोश कर बैठता हूं, किसी को शाप देने लगता हूं, उस वृत्ति को भी दूर करो (उत) और (अनृतम्) मेरे जीवन में न चाहते हुए भी आ जानेवाले असत्य को भी मुझसे दूर करो।

आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः। आपः सर्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम्।। -ऋ०१०/१३७/६

अर्थ- (आपः) जल (इद वा उ) निश्चय से (भेषजीः) औषध हैं। ये (आपः) जल (अमीवचातनीः) रोगों का विनाश करनेवाले हैं। (आपः) जल (सर्वस्य भेषजीः) सब रोगों के औषद हैं। (ता) वे जल (ते) तेरे लिए (भेषजं कृण्वन्तु) औषध को करें।

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे।। -ऋ० १०/९/१

पं० हरिशरण सिद्धान्तालंकारकृत भाष्य- (आपः) जल (हि) निश्चय से (स्थाः) हैं (मयोभुवः) कल्याण व नीरोगता को उत्पन्न करनेवाले। अर्थात् जलों के समुचित प्रयोग से हम अपने शरीरों को पूर्णतया नीरोग बना पाते हैं। (ताः) वे जल (नः) हमें (ऊर्जे) बल व प्राणशक्ति में (दधातन) धारण करें। जलों का समुचित प्रयोग यह है कि- (क) हम स्नान के लिए ठण्डे पानी का प्रयोग स्पंजिंग के रूप में (घर्षण स्नान के रूप में) करें और पीने के लिए यथासम्भव गरम का। (ख) प्रातः जीभ व दांतों को साफ करने के बाद जितना सम्भव हो उतना पानी पीयें, यही हमारी (ठमक जमं) हो। (ग) भोजन में थोड़ा-थोड़ा करके बीच-बीच में कई बार पानी लें 'मुहुर्मुहुर्वारि पिबेदभूरि'। इस प्रकार जलों का प्रयोग करने पर ये जल (महे) हमारे महत्त्व के लिए हों, शरीर के भार को कुछ बढ़ाने के लिए हों। जलों के घर्षण स्नान आदि के रूप में प्रयोग से शरीर का उचित भार बढ़ता है। भारी शरीर कुछ हल्का हो जाता है और हल्का शरीर उचित भार को प्राप्त करता है। (रणाय) जल का उचित प्रयोग शब्द शक्ति के विकास के लिए होता है। वाणी में शक्ति आ जाने से हम 'पर्जन्य निनदोपमः' मेघगर्जना के समान गम्भीर ध्वनि वाले बनते हैं। (चक्षसे) जलों के ठीक प्रयोग से ये दृष्टिशक्ति की वृद्धि के कारण बनते हैं। भोजन के बाद गीले हाथों के तलों से आंखों को कुछ मलना, प्रातः ठण्डे पानी के छींटे देना आदि प्रयोग दृष्टिशक्ति को बढ़ाते हैं, उषःपान तो निश्चय से इसके लिए अत्यन्त उपयोगी है।

इस प्रकार जल अमृतरूपी ओषधि है। शुद्धजल का सेवन न करते हुए दूसरे हानिकारक पेय पदार्थों को स्वीकार करना यह मनुष्यजाति के लिए सर्वथा हानिकारक है। इसलिए धार्मिक लोगों को उचित है कि अपने वैदिक धर्म की आज्ञा का पालन करने की अभिलाषा से वे अन्य हानिकारक पेय पदार्थों को दूर करे और शुद्ध जल के प्रयोग से अपने शरीर की अंतर्बाह्य शुद्धि करके अपना आरोग्य सम्पादन करें तथा दीर्घ जीवन धर्म के मार्ग से व्यतीत करें।

शोक समाचार

पातंजलि विश्वविद्यालय के उप कुलपति, गुरूकुल, उत्तराखंड, संस्कृत अकादमी, उत्तराखंड, संस्कृत विश्वविद्यालय में उच्च पदों को सुशोभित करने वाले हिन्दी एवं संस्कृत के प्रखर वक्ता डॉ. महावीर अग्रवाल जी का ७४ वर्ष की आयु में दिनांक १७ मार्च, २०२५ को बेंगलुरू में देहावसान हो गया। स्व. डॉ. महावीर अग्रवाल उच्च कोटि के विद्वान, लेखक, कुशल वक्ता, विचारक व समाज सेवा के रूप में सदैव स्मरणीय रहेंगे। आर्य समाज के प्रति उनका प्रेम व मार्ग दर्शन भविष्य में हमेंशा याद किया जाता रहेगा।

● सुप्रसिद्ध आर्य विद्वान शिक्षाविद् कवि, लेखक, हिन्दी के सशक्त हस्ताक्षर, साहित्यकार डा. वेद प्रकाश आर्य (त्रिपाठी) जी का लम्बी बीमारी के पश्चात् दिनांक १७ मार्च, २०२५ को ८५ वर्ष की आयु में के. जी.एम.यू.लखनऊ में प्रातः देहान्त हो गया।

स्व. डा. वेद प्रकाश महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त व आर्य समाज के प्रचार प्रसार में सदैव अग्रणी रहे। जनपद हरदोई के ग्राम-गोनी गोड़वा के मूल निवासी डा. वेद प्रकाश ने अपनी शिक्षा के प्रारम्भिक दिनों में आर्य समाज सीतापुर में रहकर कड़े परिश्रम व लगन से उत्तीर्ण कर शून्य से शिखर तक की यात्रा तय की। मृदु स्वभाव व गम्भीर विषय को सरलता पूर्वक श्रोताओं के हृदय में उतार देना उनका स्वाभाविक गुण था।

● आर्य समाज चौक, प्रयागराज के प्रधान श्री ए.के. सिंह का दिनांक २४ मार्च, २०२५ को हृदयघात के कारण आकस्मिक निधन हो गया।

स्व. ए.के. सिंह आर्य समाज ऋषि दयानन्द के प्रति समर्पित कार्यकर्ता थे। ऋषि मिशन के लिए वह सदैव तत्पर व उत्साही रहे। उनके निधन से आर्य समाज में आई रिक्तता की पूर्ति असम्भव है। ईश्वरेच्छावलीयशी, परमात्मा का नियम अटल व अक्षुण्ण है।

आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. के प्रधान श्री देवेन्द्रपाल वर्मा, मंत्री श्री पंकज जायसवाल, कोषाध्यक्ष-श्री अरविन्द कुमार एवं कार्यकारिणी के सदस्य, पदाधिकारीगण अपनी हार्दिक श्रद्धांजलियाँ अर्पित करते हुए दिवंगत आत्माओं की सद्गति व शोक सन्तप्त परिजनों को संयम प्रदान करने की प्रार्थना परमपिता परमात्मा से करते हैं। आर्य मित्र परिवार अपनी शोक संवेदनायें अर्पित करता है।

पृष्ठ.....३ का शेष

परिचित क्रान्ति केन्द्र में अधिक विस्तृत रूप में क्रान्ति-कार्य कर सके होंगे जो चौधरी छाजूरामजी की कोठी से सम्भव नहीं हो सकता था। आर्यसमाज कलकत्ता के तत्कालीन अधिकारी भी जानते होंगे कि कोई युवक समाज मन्दिर में आकर रुका है, दूसरे युवक उससे मिलते हैं, और वहाँ क्रान्ति के परामर्श ही नहीं, क्रान्तिकारियों की गतिविधियाँ भी सक्रिय हैं!

इस अनुमान से यह सहज ही बोधगम्य है कि आर्यसमाज मन्दिर और आर्यसमाजी सभी स्वतन्त्रता के रंग में पूर्णरूप से सराबोर थे। यही स्थिति प्रायः सम्पूर्ण भारतवर्ष में थी। कलकत्ता का अपना राजनीतिक और प्रशासनिक महत्त्व था। भगत सिंह जैसे क्रान्तिकारी का इस आर्यसमाज मन्दिर में दो बार निवास करना, यह बताता है कि आर्यसमाज कलकत्ता इस कड़ी में किसी अन्य स्थान से पीछे नहीं था। मन्दिर यदि क्रान्ति-केन्द्र बना हुआ था तो अधिकारियों की सहमति से ही। परवर्ती काल में भी आर्यसमाज कलकता स्वदेशी गतिविधियों का केन्द्र बना रहा। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी राजा महेन्द्र प्रताप, जयप्रकाश नारायण आदि नेतागण इस आर्यसमाज के ऐतिहासिक सभाकक्ष में अपने क्रान्तिकारी विचार प्रकट करते रहे।

स्वामी–आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश सम्पादक–पंकज जायसवाल भगवानदीन आर्य भाष्कर प्रेस,
5–मीराबाई मार्ग, लखनऊ के लिए अस्थायी रूप में शुभम् आफ्सेट प्रिंटर्स, कैसरबाग, लखनऊ से मुद्रित एवं प्रकाशित
लेखों में वर्णित भाषा या भाव से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है–सम्पूर्ण विवादों का न्याय क्षेत्र लखनऊ न्यायालय होगा।